MAA OMWATI DEGREE COLLEGE

HASSANPUR

NOTES

SUBJECT: - HISTORIOGRAPHY CONCEPT METHOD AND TOOLS

CLASS:- M.A. (History 3rd Sem.)

अथवा

इतिहास की प्रकृति तथा इसके सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों की विवेचना करें।
(Discuss the nature of history and different views about it.)

उत्तर–इतिहास मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार क्षेत्र में उदित परिस्थितिजन्य ऐसी घटनाओं, उनके कारणों और परिणामों का विवरण है जो राष्ट्रों और संस्कृतियों के रंगमंच पर अपने पद चिह्न छोड़ती हुई अग्रसर होती रहती हैं, इसलिए इसे मानव जीवन की यथार्थ कथा कहा जा सकता है। अतीत, स्वयं में मनुष्य की स्वाभाविक जिज्ञासा का मोह क्षेत्र है, इसलिए वह इसके बारे में हमेशा ही जानने को उत्सुक रहता है। अपने कुल-क्रम तथा पूर्वजों के चरित्र में उसकी स्वाभाविक श्रद्धा उसे अतीत की ओर ले जाती है। वर्तमान को उनके जीवनवृत्त ने क्या प्रदान किया, इसकी खोज मनुष्य उसी प्रकार करता है जैसे वह किसी खोए हुए की करता है। अतः जब लेखन कला का आविष्कार नहीं हुआ था, वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसे स्मरण रखकर आगामी पीढ़ी को देता रहा था और लेखन कला को प्राप्त करने के बाद वह उसे भी अपनी अन्य बौद्धिक चेष्टाओं की तरह जब लिपिबद्ध करने लगा तो यह भी स्वाभाविक है कि लेखन संचरण के संबंध में ऐसा विवरण, लेखक चाहे जिस काल में भी रहा हो पाठक से सीधे ही जुड़ता है। अतः लेखकीय वैचारिक-बौद्धिकता का रस बड़ा रंजक लगने लगता है। इसी कारण इतिहास स्वयं को अतीत की कहानी के रूप में प्रकट करता है।

इतिहास का अर्थ *(Meaning of History)*

यूनानी इतिहासकार **'हेरोडोटस'** को आधुनिक इतिहास का जनक माना जाता है। आगे चलकर **'थ्यूसिडिडिज'** ने इस परम्परा को विकसित किया। वर्तमान की परिस्थितियों तथा सामाजिक-राजनीतिक करवटों को अतीत की छाया में व्याख्यायित करने का काम बुद्धिवाद करता रहा है। यूनान में जिस तरह से यह उभरा, वह यूरोप की इतिहास परम्परा में मान्य हुआ, क्योंकि वह यूरोप के नव-जागरण काल के विचारकों को उपयोगी प्रतीत हुआ। अतीत के यथार्थ का अर्थ निष्पादन करने के लिए वह मार्गदर्शक था। कालान्तर में हुए इतिहास संबंधी अनुमोदन इसी के परिणाम थे। यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार आन्दोलन, ईसाई इतिहास दर्शन एवं अवधारणा के विरुद्ध हुई प्रतिक्रिया भी इसी का परिणाम थी, जिसने इतिहास को

बहु-आयामित किया। वर्तमान के लिए उसकी कैसी व्यवस्था और विश्लेषण सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक रूप में उपयोगी हो सकती थी, इतिहास दर्शन ने यह दृष्टिकोण भी अपनाया। अतः इतिहास क्या है, वर्तमान बौद्धिकवाद के संदर्भ में, इसकी उचित परिभाषा करना अन्य किसी भी विषय से कठिन है। इन्हीं कारणों से विद्वानों में इतिहास के अर्थ के संबंध में परस्पर विरोधी मत हैं, जिन्हें निम्नलिखित परिभाषाओं से कुछ हद तक समझा जा सकता है–

कार्ल आर. पापर का कहना है कि "इतिहास का कोई अर्थ नहीं होता है, क्योंकि इतिहास का कोई लक्ष्य नहीं है। हम अपने तथ्यों को इस पर लादते हैं। इतिहास का अपना अर्थ नहीं होता है। इतिहास का अर्थ इतिहासकार द्वारा निश्चित होता है। इतिहासकार तथ्यों को अर्थ प्रदान करता है। प्रगति का अर्थ होता है किसी का आगे बढ़ना। यह मनुष्य कर सकता है, इतिहास नहीं। अतः यह स्वतः स्पष्ट है कि इतिहास में कोई अर्थ नहीं होता, इतिहास में एक व्यवस्था का दर्शन होता है। जहाँ व्यवस्था है वहाँ अर्थ का अस्तित्व नहीं हो सकता।"

ई. एच. कार के अनुसार, "इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच एक अनंत संवाद है तथा इतिहासकार का मुख्य कार्य वर्तमान के संदर्भ में अतीत का अध्ययन करना है।"

चार्ल्स फर्थ के अनुसार, "इतिहास मानवीय सामाजिक जीवन का वर्णन है। इसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले उन सक्रिय विचारों का अन्वेषण है जो समाज के विकास में बाधक अथवा सहायक सिद्ध हुए हैं। इन सभी तथ्यों का उल्लेख इतिहास में होना चाहिए।"

कॉलिंगवुड के अनुसार, "इतिहास का संबंध न तो अतीत और न इतिहासकार के अतीत संबंधी विचार में रहता है, अपितु इतिहास से इन दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। इतिहासकार जिस अतीत का अध्ययन करता है, वह मृत अतीत का नहीं, अपितु इतिहास के मस्तिष्क में सजीव अतीत होता है।"

प्रो. ऐक्टन के अनुसार, "इतिहास का संबंध उन सारे मानवीय मनोवेगों, चिंतनों, क्लेषों एवं कर्मों से है जो अतीत में हुए हैं, जिनका प्रभाव वर्तमान में भी भरा पड़ा है। यह परिवर्तन और शाश्वतता का प्रतीक है।"

हीगल के अनुसार, "इतिहास उद्देश्यमूलक है। इतिहास का लक्ष्य स्वतन्त्रता है। उसकी प्राप्ति के लिए जननायक होते हैं जो बुद्धि और कौशल द्वारा इतिहास को विकसित करते हैं।"

बाल्श के अनुसार, "हमें यह मान लेना चाहिए कि इतिहास अर्थपूर्ण है अथवा इतिहास अव्यवस्थित अथवा असंगठित घटनाओं का संयोग है जिसमें न तो कोई स्वर है और न तर्क।"

हेनरी पिरेन ने कहा है, "इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों की उपलब्धियों की कहानी है।"

ट्रेवेलियन के अनुसार, "इतिहास अपने परिवर्तनीय अंश में एक कहानी है।"

रेनियर के अनुसार, "इतिहास सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्य के कार्यों का उल्लेख है।"

डिल्थे कहता है, "इतिहास वर्तमान में अतीतकालीन ज्ञान का अध्ययन है।"

क्रोचि का कथन है, "सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है।"

जी. आर. मिल्टन के अनुसार, "इतिहासकार जिसे लिखता है, वही इतिहास है।"

वस्तुतः उपरोक्त सभी मत इतिहास से अधिक इतिहास दर्शन की बात करते हैं। कोई विद्वान उसे अर्थ रहित मानता है, कोई उद्देश्य रहित, जबकि दूसरे विद्वान उसे अर्थपूर्ण तथा उद्देश्यपूर्ण भी मानते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि वह इतिहास की खोज उन घटनाओं के यथार्थ में नहीं, उन घटनाओं के मन्तव्य में करते हैं जो इतिहास दर्शन की बात है। इसी क्रम में हमें 'इतिहास' की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं का अध्ययन भी कर लेना चाहिए–

काल्हर कहता है कि "इतिहास अर्थपूर्ण होता है। कुछ युग, कुछ घटनाएँ, कुछ व्यक्ति अन्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं और इसी कारण तत्कालीन घटनाओं के केन्द्र बनते हैं।" काल्हर के अनुसार इतिहास का निम्न अर्थ होता है–

1. इतिहास कभी भी एक घटना का सर्वांगी प्रस्तुतीकरण नहीं कर सकता है।
2. इतिहासकार व्यक्तिगत समीकरण को नहीं हटा सकता। यदि इतिहासकार लक्ष्य के विषय में सावधान है तो ईश्वर इतिहास के अर्थ के लिए सावधान रहेगा।

3. ऐतिहासिक शोध का तब तक कोई लाभ नहीं है, जब तक इतिहास का कोई ज्ञान न हो। ऐतिहासिक शोध का स्वरूप अर्थपूर्ण होना चाहिए।
4. अतीत का पुनर्निर्माण इतिहासकार केवल अपने विचारों के परिप्रेक्ष्य में नहीं करता, अपितु उसे यह भी जानना होता है कि जिन लोगों ने इन घटनाओं में भाग लिया, उनके इस विषय में क्या विचार तथा अनुभूतियाँ थीं।

प्रो. सीले ने इतिहास को 'अतीत की राजनीति' कहकर पुकारा है।

हुइजिंगा कहता है, "इतिहास अतीत की घटनाओं का विवरण है।"

(A) परिभाषाओं का विश्लेषण *(Analysis of Definitions)*

उपरोक्त परिभाषाएँ यह प्रकट करती हैं कि **"इतिहास को अतीत के यथार्थ का एक विवरण वृत्त मात्र भी कहा जा सकता है, और उससे कुछ अधिक भी अर्थात् हर विद्वान ने उसे किसी-न-किसी तरह की सापेक्षता से संबंधित किया है और अन्त में जब कोई इतिहासकार जैसे जी. आर. एल्टन, इतिहास के विषय में जैसे कुछ भी कहने में असमर्थ सा हो गया हो तो कहता है कि इतिहासकार जिसे लिखता है वही इतिहास है।"** अर्थात् वह इतिहासकार को इतिहास की समझ के लिए उन्मुक्त कर देता है, और यह मान लेता है कि जिस इतिहासकार ने जो भी लिखा है या वह लिखता है, वही इतिहास है।

निश्चय ही इतिहास की यही गति है–सर्वायातित; उसका कोई आयाम ही नहीं प्रतीत होता। इसका मात्र यही कारण प्रतीत होता है कि प्रत्येक मनुष्य किसी भी दृश्य या घटना को देखता है, उसे देखते ही जो चित्र उसके दिमाग में आता है वह उसे समझते-समझते अपना रूप बदलने लगता है। इसी कारण इतिहास के अतीत के यथार्थ सत्य को उद्घाटित करने की अपेक्षा करता तो है परन्तु समझदार व्यक्ति उसके स्वरूप पर विचार न करे यह नहीं हो सकता। अतः घटनाओं के कारणों, उनके प्रकारों, परिस्थितियों, घटनाओं से संबंधित पात्रों के चरित्र, उनके विश्वासों पर विचार; मानसिकताओं और संयोगों आदि पर विचार करने लगता है तो घटनाओं के यथार्थ के रूप में करवटें लेने लगता है। इसी कारण घटना स्वयं अपने तात्कालिक रूप में भी इस क्रिया से अलग होकर खड़ी हो जाती है, जिसके घटित होने से वह हुई होती है। इसके बाद उसे परिवेशित करते हैं वे लोग उसे देखते हैं, तत्पश्चात् उसके विषय में सुनने वाले उसे अपनी वैचारिक मिट्टी से गढ़ते हैं। फिर यह क्रम उस घटना को लिपिबद्ध करने वाले तक चलता है जो घटना के उन सभी आधारों में अपनी तीसरी दृष्टि को घुमाता है, जो भी घटित हुए तथा कथित यथार्थ का ज्ञान देने उस तक पहुँच चुके होते हैं। परिणामस्वरूप घटना एक कहानी हो जाती है, जिसे इतिहासकार यदि अपने स्वयं के **'इतिहास-दर्शन'** की सापेक्षता से मुक्त भी रखे तो भी कहा जा सकता है कि उसने यथार्थ का अंग-भंग नहीं किया। परन्तु इतिहासकार अर्थात् **'हिस्टोरे'** श्रोताओं के बहु-आयामी कौतूहल का निराकरण करने को बाध्य होते हैं। वह उस कहानी का आदि-अन्त भी अपनी वैचारिकता से विवेकीय संभावनाओं का विश्लेषण कर प्रस्तुत करते हैं। घटनाओं के यही तात्कालिक परिप्रेक्ष्य होते हैं जिन्हें हम तात्कालिक यथार्थ या इतिहास कह सकते हैं। परन्तु कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। समय के साथ **'हिस्टोरे'** (इतिहासकार) अपने-अपने विद्यमान वर्तमान में भी इन घटनाओं के प्रभाव की खोज करने लगते हैं और उसे भविष्य के लिए ऊर्जा प्रदान कर देते हैं, जिनका भुगतान सामाजिक संस्कृति को करना पड़ता है। यह करामात **'हिस्टोरे'** के अपने इतिहास दर्शन की होती है। इसका उदाहरण हम वर्तमान काल के अनेक **'हिस्टोरों'** का नाम लेकर दे सकते हैं, जैसे–**कार्ल मार्क्स।**

सारांश में कहा जा सकता है कि **'इतिहास दर्शन'** में इतिहास की भूमिका निवास करती है जो इतिहास का निर्माण करती है। वास्तव में गहराई से सोचा जाए तो कोई भी विषय मात्र विषय के रूप में अपने 'विषय दर्शन' के अधीन होता है, जिसका प्रतिपादन विषय के विद्वान अर्थात् 'विषय के हिस्टोरे' किया करते हैं। यह दूसरी बात है कि हर विषय के विषय दर्शन का प्रभाव समाज पर अलग-अलग तरह से पड़ता है। हम इस प्रसंग में इतिहास को दृष्टि में रखकर, यदि उसकी उपर्युक्त व्याख्या तथा परिभाषाओं पर विचार करें तो इतिहास दर्शन का प्रभाव भी समाज के हर क्षेत्र पर कैसे होता है, समझा जा सकता है। इतिहास की

प्रकृति अन्य सभी विषयों से अलग है। इसकी चरित्रगत गहराई न समझ में आने वाली पहेली होते हुए भी ऐसी पहेली है, जिसका अर्थ चाहे समाज का शिक्षित व्यक्ति हो या अशिक्षित, समझने का दावा कर सकता है। अल्पज्ञानी या एकांगी ज्ञानी भी यदि किसी समाज या सामाजिक वर्ग में प्रमुखता ग्रहण कर लेता है तो इतिहास की दुहाई देकर वह अपने निहित स्वार्थों की सिद्धि के लिए अपना मार्ग प्रशस्त कर सकता है। यह बात वर्तमान राजनीतिक संस्कृति में भली प्रकार देखी जा सकती है।

(B) अतीत का वर्तमान से संबंध *(Relation of Past with that of Present)*

भविष्य का कोई ज्ञान नहीं, वर्तमान संघर्ष का रंगमंच है। अतः आत्मसंतोष के लिए अतीत बड़ी सुखप्रद कहानी है। सामाजिक विज्ञान का इसी कारण इतिहास मूल स्रोत भी है। इसे अतीत के संस्मरण का चित्र भी कहा जा सकता है। परन्तु जब वह वैचारिक रंगों से अभिपूरित होता है तो उसे मात्र संस्मरणों का चित्र भी नहीं कहा जा सकता। हम उसमें अपने वर्तमान सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप को पहचानने की चेष्टा ही नहीं करने लगते, अपितु उसकी पूर्ण परिप्रेक्ष्य में से कुछ छांट-छांट कर उससे सापेक्ष होकर वर्तमान को गढ़ने लगते हैं। अतः इतिहासकार जब अतीत की घटनाओं के अंतःस्थल में प्रवेश कर क्रिया-कलापों के परिवेश में मानवीय मस्तिष्क को ढूँढ़ना शुरू कर देता है, तो उसकी यह खोज भी इतिहास बन जाती है। वह तब अपनी बौद्धिक सामग्री से अतीत और वर्तमान के बीच तरह-तरह के सेतु का भी निर्माण करने लगता है, जिससे इतिहास का व्याख्या भाग निर्मित होता है। अतः हम कह सकते हैं कि अतीतकालीन घटनाओं की व्याख्यात्मक संभावनाओं को उनके यथार्थ चित्रों में से आकर्षित करके निरूपित करना ही इतिहास कला या दर्शन कहा जा सकता है। वस्तुतः इस प्रकार इतिहास दर्शन और इतिहास के चरित्रगत तत्त्व अलग हो जाते हैं। इतिहास कहता है–जो मेरे अपने यथार्थ रूप में अतींत के योग्य है, उसे समझो जबकि इतिहास दर्शन कहता जो कुछ अतीत में घटित हुआ है, उससे वर्तमान को खाद-पानी देकर भविष्य का इतिहास बनाओ और खाद-पानी तो इतिहासकार के दृष्टिकोण नामक कारखाने का उत्पाद होता है।

इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच एक अन्तहीन संवाद है (History is an unending dialogue between past and present)–इतिहास को वर्तमान और अतीत के मध्य एक पुल के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। इतिहास की इस अवधारणा के प्रबल समर्थक महान इतिहासकार ई. एच. कार हैं। उनके अनुसार, "वस्तुतः इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अंतर्क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है।" उनके अनुसार इतिहास के तथ्य हमें कभी शुद्ध रूप में नहीं मिलते, क्योंकि शुद्ध रूप में वे न रहते हैं और न ही रह सकते हैं। वे हमेशा लेखक के मस्तिष्क में रंग कर आते हैं। बाद में हम जब इतिहास का कोई कार्य शुरू करते हैं तो हमारा ध्यान सबसे पहले उसमें प्राप्त तथ्यों पर केंद्रित नहीं होना चाहिए, अपितु उस इतिहासकार पर होना चाहिए जिसने उसे लिखा है। इसलिए उनका मानना है कि इतिहास की सामग्री अतीत के तथ्य होते हैं और इतिहासकार वर्तमान का प्रतिनिधित्व करता है। किसी भी इतिहास का निर्माण इतिहासकार अतीत के तथ्यों के आधार पर ही करते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि व्यक्ति अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान को ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाता है। कभी भी अतीत का अन्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अतीत ही भावी पीढ़ी के विकास के लिए प्रेरणास्रोत का कार्य करता है। इतिहास ही वह माध्यम है जिसके माध्यम से अतीत के अनुभवों से भविष्य को सुखद बनाया जा सकता है।

हम सभी अनुभव करते हैं कि हमारा अतीत से संबंध है– परम्पराओं में, रीति-रिवाजों में, संस्कृति में तथा विश्वासों में निश्चित ही यह सब बातें इतिहास में मिलती हैं, परन्तु एक ढंग है संस्कृतियों का जिनमें सब कुछ अतीत का होते हुए भी वर्तमान इससे स्वयं को एक नएपन में देखने को प्रेरित करता है। ऐसी स्थिति में मानवीय चिन्तन कभी उस सब कुछ को मन से स्वीकार करता है, तो कभी बे-मन से। अवश्य ही ऐसी स्थिति आती है जब बे-मन स्वीकार्य अनेक तत्त्व छोड़ दिए जाते हैं जिनका आधार होती है अतीत की व्याख्या, जो प्रायः अतीत का वह यथार्थ प्रस्तुत नहीं करती, जो वास्तव में होता है। यह देन इतिहास की नहीं अपितु इतिहास दर्शन की होती है।

परम्परागत इतिहास (Traditional History)–जब तक लेखन कला प्रकट नहीं हुई थी या यूँ कहो कि उसने इस युग में प्रवेश नहीं किया था, हर विषय सामान्य लोगों की पहुँच से बाहर था। उस समय तक श्रुति का ही महत्त्व था जो उपदेशों, कथाओं, वक्ताओं तथा शास्त्रार्थों, मेले-तमाशों में होने वाली सम्मिलित चर्चाओं, संपन्न लोगों की साहित्यिक गोष्ठियों, रंगमंचीय कलाओं आदि में निहित थी, वही जन-जीवन की चेतना भी थी। परन्तु ऐसा नहीं है कि इस जन-जीवन श्रुति चेतना का कोई दर्शन नहीं था। उस काल में हर उस बात का महत्त्व था जो कही जाती थी तथा सुनी जाती थी। यदि ऐसा न होता तो हमारे सामने न सांस्कृतिक परम्पराएँ विद्यमान होतीं और न धार्मिक विश्वास। उनमें भी अतीत तो उसी तरह विद्यमान था, जैसे वह वर्तमान में भी संस्कृतियों के जीवन में प्रवाहित है, परन्तु तब भी वह समय के परिवर्तन-चक्रों के इतिहास दर्शन के ही अधीन था। इतना अवश्य है कि तब उसे 'इतिहास दर्शन' के नाम से नहीं जाना जाता था। अतीत के यथार्थ का चिन्तन और व्याख्या तब भी होती थी, निश्चय ही तब इतिहास उसमें गड्ड-मड्ड हो जाता था, परम्पराओं के विश्वास परिवर्तित हो जाया करते थे। यही कारण था कि समय-समय पर अनेक नए धर्मों का भी उदय हुआ। इनमें आश्चर्य की बात यही है कि उन सबके मूल तत्त्व में सर्वदा से जमी हुई परम्पराएं और सांस्कृतिक परिवेश आज भी निवास करते हैं। यह सब 'इतिहास' की करामात है। अतीत की यह परम्परा वर्तमान में भी जारी है। यह बात उससे हटकर नहीं है, जो हमें साहित्य में भी दिखाई देती है। सदा से ही साहित्य-मान जीवन, संस्कृति, भावनाओं और व्यवहार का चित्रण करता है, और इसी का चित्र बना रहेगा, परन्तु न तो उसके मूल तत्त्व कभी बदले जा सके हैं, न ही बदले जा सकेंगे। यह भी मानव सभ्यता का इतिहास दर्शन ही है कि मनुष्य अपने जीवन प्रवाह को उन्हीं जीवन तत्त्वों के इर्द-गिर्द घुमाता हुआ आगे चलता रहता है, जो मानव सृष्टि के साथ उसकी जीवनचर्या में जन्मे होंगे। अतः इतिहास दर्शन को वृहद् और व्यापक अर्थ में मानव जीवन के अनन्त अतीत की ही व्याख्या मान लिया जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि आधुनिकता की सीढ़ियों पर चढ़े हुए वर्तमान जीवन से पहले जो कुछ भी था, वह या तो इतिहास था या उसका दर्शन।

मनुष्य ने सृष्टि रचयिता परमशक्ति के प्रति स्वयं को कब समर्पित किया यह तो पता नहीं, संभवतः यह इतिहास के अतल तल में दबी हुई ऐसी बात है, जिसका भेद उसी तरह नहीं पाया जा सकता, जैसे हम ईश्वर नामक शक्ति का भी भेद नहीं जान सकते। अतः यह कह सकते हैं कि इतिहास दर्शन भी ईश्वरीय शक्ति की व्याख्या के साथ शुरू हुआ, जिसने मनुष्य की व्यावहारिक नैतिकता के सिद्धान्तों को धर्म नाम की वस्तु से संयुक्त करके ईश्वर को समर्पित किया। सामाजिक जीवन की सुचारु व्यवस्था के लिए नैतिक सिद्धान्तों का रक्षक धर्म, तद्नुसार ईश्वर बना। इतिहास दर्शन की यही भूमिका है, जिस पर अनेक सामाजिक संस्कृतियों और राजनीतिक व्यवस्थाओं ने जन्म लिया और अपने अलग-अलग इतिहास रचे। यह इतिहास यथार्थ की कितनी और कैसी भित्तियों पर रचे गए, इसका तो अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता, परन्तु इतिहास दर्शन यह बताता है कि मनुष्य ने सदा ही संघर्ष किया और सामाजिक कल्याण के लिए अनेक वीरों ने जन्म लिया तथा मानव जीवन का उत्सर्ग किया, अनैतिक मार्ग पर चलने वालों के सामने अवरोध उपस्थित किए। परन्तु जब से ऐसे लोगों की कहानी लिपिबद्ध होने लगी, तभी से **'कहानी'** का नाम इतिहास पड़ा और उस कहानी के विश्लेषण की चेष्टा का नाम **'इतिहास दर्शन'** हुआ। इतिहास दर्शन की अवधारणाएँ भी विकसित हुईं। वर्तमान काल में इनके आधार को वैज्ञानिक चिन्तन या विधि, प्रक्रिया आदि नाम दिए गए हैं।

वर्तमान का इतिहास (History of Present)–उपरोक्त प्रक्रियाओं के जन्म में अवश्य ही मानवीय बौद्धिकता और चिन्तन समाहित है। अतः समय-समय पर तत्कालीन वर्तमान ने शिलालेख आदि के माध्यम से राज्यों के कर्णधारों के कार्यों को प्रमुखता दी है। इसके अतिरिक्त नैतिक तत्त्वों की व्याख्या करने वाले धर्म गुरुओं तथा धर्म संस्थापकों को भी मान्यता दी, क्योंकि इन्हीं से सामाजिक व्यवस्था का परिरक्षण होते रहने की परम्परा बनी थी। इनके इर्द-गिर्द घूमने वाली घटनाएँ इनकी कहानी थीं अर्थात् इतिहास था, जो विभिन्न सभ्यताओं की अपनी विशिष्ट अवधारणाओं के रूप में विद्यमान था। इतिहास के वर्तमान रूप में विकास का उद्गम यूनान में हुआ है। बौद्धिक कार्य-व्यापार के गम्भीर चिंतन की अभिव्यक्ति, यों तो मनुष्य की सभी

प्राचीन सभ्यताओं में विद्यमान है, परन्तु प्रत्येक सभ्यता के परम्परागत चरित्र में इसके रूप अलग-अलग थे। यूनान में परीक्षासिद्ध गवेषणा के अर्थ में स्वयं इतिहास शब्द का प्रयोग हुआ। यूनान में **'हिस्टोरे'** उस विद्वान को कहा जाता था जिससे लोग किसी आपसी शास्त्रार्थ के निपटारे की प्रार्थना करते थे। विशेष रूप से ऐसे वाद-विवाद या शास्त्रार्थ ऐतिहासिक घटनाओं के विषय में होते थे। **'हिस्टोरे'** क्योंकि ऐसे वाद-विवाद का निपटारा करता था इसलिए वाद-विवाद के विषय को **'हिस्ट्री'** कहा गया। यों तो 'इति-ह-आस' में इन तीन शब्दों में पुराण शब्द का संश्लिस्ट स्पष्ट इतिहास है, अर्थात् 'निश्चित रूप से ऐसा हुआ था।' भारत में पुराण शब्द के साथ इतिहास का प्रयोग भी प्राचीन समय में हुआ है। अतः निश्चय ही ऐसा हुआ था जैसी अवधारणा का नाम 'इतिहास' ही था। सामान्य रूप से जन-साधारण में घटित-घटना संबंधी ज्ञान को इतिहास स्वीकार किया जाता था। घटना की व्याख्या में कारण-शृंखला तथा परिणाम-शृंखला के यथार्थ को जान लेने की जिज्ञासा मनुष्य के स्वभाव में नैसर्गिक रूप से होती है।

(C) इतिहास में इतिहास *(History with in History)*

हम इतिहास के विलक्षण चरित्र का अध्ययन करने के लिए यूरोप में हुए पुनर्जागरण काल या उस समय की ओर चलना उचित समझते हैं जिसमें मुद्रण माध्यम ने जन्म लेकर ज्ञान को केवल कुछ लोगों तक सीमित नहीं रहने दिया। कभी ये बातें यूनान में 'हिस्टोरे' साक्षात रूप में किया करते थे, अब वह अपनी रची-रचनाओं में बैठकर चुपचाप करने लगे। यों तो यह प्रकृति का स्वाभाविक नियम है कि मनुष्य में बुद्धि नामक तत्त्व संसार के प्रत्येक कार्यक्रम का अववाहक होता है, परन्तु व्यापक रूप में वह समाज के सामाजिक और राजनीतिक स्वरूप को कब और कितना तथा कैसे प्रभावित कर सकता है, यह बात बुद्धि तत्त्व की धार्मिक रश्मियों के व्यापक या अव्यापक प्रसार पर आधारित है। मनुष्य स्वभाव से ही अपनी बौद्धिक चेतना को विकीर्णित करता रहता है। सम्भवतः मानव चरित्र की यह बात ही संसार के कार्य-व्यवहारों की चालक शक्ति है, अतः वह सदैव अपने प्रभाव को व्यापक से व्यापक करने की चेष्टा करती है। इस कार्य में उपलब्ध साधन ही उसके सहायक हो सकते हैं। मुद्रण कला के आविष्कार से पूर्व उसके पास इस कार्य के लिए साधन सीमित थे। अतः उनके सहारे ही चालक शक्ति अपना कार्य करती थी, परन्तु मुद्रण कला के जन्म तथा विकास से इस शक्ति ने अपने हाथ-पैर असीम रूप से फैला दिए। सामाजिक संस्कृति में इतिहास चूँकि हर जाति, समुदाय को अन्तर्निहित रखता, इसलिए अपने व्यक्तित्व को मनुष्य अपने परिप्रेक्ष्य में पहचाने की जिज्ञासा से ओत-प्रोत होता है। अतः उस पर अपने वैचारिक तन्त्र का निर्माण करना भी उसके लिए सरल तथा सहज होता है। समय के रंगमंच पर प्रमुख भूमिकाएँ प्राप्त कर लेने वाले लोगों के लिए अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए यह आसान होता है। अतः यह स्वाभाविक था कि अपने सिद्धान्तों को प्रभाव में लाने के लिए ऐसे विद्वानों ने इतिहास का ही सहारा लिया।

यह सर्वविदित है कि आर्थिक विषमता का कारण केवल अमीरों या सम्पत्ति धारकों द्वारा समाज के किसी वर्ग का शोषण मात्र ही कारण नहीं होता, फिर भी निर्धनों को कार्ल मार्क्स ने यही पाठ पढ़ाया कि सदा से ही धनी लोग शोषण करते रहे हैं और वे सदा से ही शोषक हैं। इसके लिए उसने तात्कालिक समाज में ऐसे वर्ग की प्रकृतियों को आदिकालीन शाश्वत ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत कर दिया। उसने इससे मुक्त होने के लिए निर्धन वर्ग के मन में राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए रक्त-क्रान्ति की प्रेरणा भी दी और वह निर्धन वर्ग को राष्ट्र के उत्पादन में समान भाग प्राप्त कर पाने का प्रलोभन देकर अपनी साम्यवादी विचारधारा की जड़ें जमाने में सफल हुआ। यह समाज की आर्थिक विषमता की कमजोर नस पर 'इतिहास दर्शन' का ही प्रहार था। इसी प्रकार 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में इतिहास का इतिहास एक पृथक् क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ। 17वीं शताब्दी के दार्शनिकों का इस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उनके सिद्धान्तों को इतिहास के नवीन क्षेत्रों द्वारा अभिव्यक्त किया गया।

इतिहास की प्रत्यक्षवादी लेखन-परम्परा से आप क्या समझते हैं?
(What do you understand by the Modern Positivist Tradition of Historical writing?)

अथवा

'इतिहास एक सामाजिक भौतिकी है–काम्टे'। टिप्पणी कीजिए।
('History is a social physics : Comte. Comment.)

उत्तर–पुनर्जागरण काल में वैज्ञानिकों ने अपनी विज्ञानवादी सोच के अनुसार यह धारण किया कि यदि वैज्ञानिक विधियों से परिकल्पनात्मक भाववादी दार्शनिक तत्त्वों का परीक्षण और निरीक्षण संभव नहीं है तो तर्क के आधार पर आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग-नरक की यथार्थता का बोध और मूल्यांकन किया जाए। इस प्रकार 20वीं सदी के आरम्भ में भाववादी दर्शन का स्थान तार्किक भाववाद ने ले लिया। सन् 1930 ई. में **बार्ननेप** तथा **राइनबाक** के संपादन में **आर केण्टीनस** का प्रकाशन भी आरम्भ हुआ। तार्किक भाववाद के प्रणेताओं ने स्पष्ट रूप से दर्शन के गूढ़ शोध के लिए तार्किक और वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग की उपयोगिता को अपरिहार्य माना। इन विचारकों ने यथार्थता की पुष्टि के लिए तार्किक भाववाद, तार्किक अनुभववाद तथा वैज्ञानिक अनुभववाद के आधार पर तार्किक विश्लेषण तथा तार्किक संरचना विधि का प्रयोग किया। इस तथ्य को स्थापित करने के लिए इन लोगों ने अर्थ सिद्धांत के नाम से प्रचलित किया। दार्शनिकों ने इस कार्य के लिए तार्किक भाषा विश्लेषण विषय को आवश्यक बताया।

आगस्ट काम्टे नामक दार्शनिक नेपोलियन बोनापार्ट के समय में विद्यमान था। उन्होंने समाजशास्त्र तथा प्रत्यक्षवाद का प्रचलन किया। उन्होंने सन् 1830-1842 ई. की अवधि में प्रत्यक्षवाद की रचना की। उनका प्रत्यक्षवादी दर्शन पूरी तरह विज्ञान के आधार पर था। काम्टे की सभी अवधारणाएँ प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त पर आधारित हैं। काम्टे का मानना है कि अनुभव, परीक्षण, निरीक्षण, प्रयोग तथा वर्गीकरण की सुव्यवस्थित कार्य प्रणाली द्वारा न केवल प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन सम्भव है, अपितु समाज का भी अध्ययन सम्भव है। विज्ञान ने पुनर्जागरण काल में जितने आविष्कार किए थे उनके सिद्धान्त और प्रणाली प्रकृति की गोद में सुरक्षित थे, क्योंकि प्रकृति के नियम अपने हैं, जो कुछ तो प्रत्यक्ष हैं तथा कुछ अप्रत्यक्ष। रात-दिन, सूर्य-चन्द्र गति और ग्रहण, ऋतु क्रम आदि प्रकृति में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, निश्चित रूप से मनुष्य ने इन नियमों का ज्ञान अनुभव, परीक्षण, प्रयोग तथा वर्गीकरण की कार्यप्रणाली द्वारा ही प्राप्त किया है। प्रत्यक्षवाद की धारणा है कि सामाजिक घटनाएँ राज्यों की स्थापना, प्रसार, विकास, संगठन तथा पतन आदि भी निश्चित नियमों के अधीन हैं। काम्टे प्रत्यक्षवाद की कार्यप्रणाली की सीमा में धार्मिक तथा तात्विक विचारों को लाना असम्भव मानते थे। अतः उन्होंने अपने प्रत्यक्षवादी सिद्धांत से उनको दूर रखा। क्योंकि उनका प्रत्यक्षवाद इतिहास की सीमाओं तक ही सीमित था। वह वास्तव में वैज्ञानिक विधा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित करने में विश्वास करते थे। अतः प्रत्यक्षवाद किसी निरपेक्ष विचार (*Absolute Idea*) को यथावत स्वीकार नहीं करता। सामाजिक या राजनीतिक परिवर्तन चूँकि किसी निरपेक्ष विचार का परिणाम नहीं है, अतः वह सामाजिक व्यवहार तथा राजनीतिक क्रिया-कलापों को प्रत्यक्षवादी अध्ययन का विषय मानता है।

काम्टे का विश्वास है कि धार्मिक और तार्किक चिंतन अंधकार में पड़ी किसी अज्ञात वस्तु को खोजने जैसा है, ऐसा करने पर अभीष्ट या अनाभिष्ट प्राप्त हो सकता है और नहीं भी प्राप्त हो सकता है। ऐसी उपलब्धियों का सत्य या काल्पनिक होना एक संयोग या अनुमान ही है। परन्तु प्रत्यक्षवाद एक यथार्थ प्रणाली है। इस कारण उसके निष्कर्ष सत्य या यथार्थ ही होंगे। अतः प्रत्यक्षवाद के आधार तत्त्व हैं–**निरीक्षण, अवलोकन, प्रयोग तथा वर्गीकरण**। निश्चित रूप से प्रत्यक्षवाद का उद्भव विज्ञान की आश्चर्यजनक उपलब्धियों के कारण ही हुआ, जिन्होंने साधारण से साधारण लोगों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचने का दृष्टिकोण प्रदान किया।

वैज्ञानिक आविष्कारों का आनन्द प्राप्त करने वाले सामान्य लोगों की वैचारिकता में तर्क और विवेक प्रधा प्रवृत्ति का प्रवेश पूरी तरह न हुआ हो, लेकिन उसने शिक्षित समाज और इतिहासकारों के मन में अवश्य प्रचलित धार्मिक विश्वासों के प्रति शंका प्रकट की।

काम्टे के प्रत्यक्षवाद को इतिहास के विज्ञानवादी इतिहासकारों ने सहज ही स्वीकार किया और माना कि अतीत की पुनः प्राप्ति प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त के समुचित क्रियान्वयन द्वारा ही सम्भव है। **काम्टे** का प्रत्यक्षवाद **ह्यूम, कांट, तुर्गो, कौंदारसे** के प्रभाव का ही परिणाम था। इनके प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त को माण्टेस्क्यू, सेण्ट पियरे तथा सेण्ट साइमन के विचारों ने भी सर्वाधिक प्रभावित किया। इतिहास में वैज्ञानिक तथा प्रत्यक्षवादी आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य अतीत का यथावत यथार्थ प्रस्तुतीकरण है। इस विधा को स्वीकार करके अनेक इतिहासकारों ने ऐतिहासिक शोध की आधुनिक विधाएँ प्रस्तुत की हैं। जर्मनी में **नेबुर** तथा **राँके**, ब्रिटेन में **ब्यूरी** तथा **एक्टन**, अमेरिका में **बियर्ड** तथा **कार्ल बेकर** और फ्रांस में **टेने** जैसे विख्यात इतिहासकारों ने शोध की आधुनिक विधाओं का प्रतिपादन किया और वैज्ञानिक प्रणाली की आधारशिला का निर्माण किया। इन विद्वानों का उद्देश्य ऐतिहासिक त्रुटियों को ठीक करना था।

विज्ञान की उपलब्धियों ने इतिहासकार का ध्यान, वैज्ञानिक प्रक्रिया की ओर आकर्षित किया। इस चिन्तन ने इतिहास के प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त को अपनाने की सूझ दी और उसने इतिहास के अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों तथा मान्यताओं को क्रियान्वित करने की ओर कदम बढ़ाए। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जर्मनी, फ्रांस इटली में विज्ञानवादी इतिहासकारों के बीच गम्भीर विचार-विमर्श हुआ। इंग्लैण्ड में सर्वप्रथम **प्रो. जे.बी.ब्यूरी** ने 1903 ई. में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सत्र आरम्भ के अवसर पर अपने अभिभाषण में कहा कि **"इतिहास विज्ञान है न कम और न अधिक।"** उन्होंने जोर देकर कहा कि जब तक इतिहास को कला मात्र स्वीकार किया जाएगा, तब तक इसमें यथार्थता तथा सूक्ष्मता का समावेश गम्भीरतापूर्वक नहीं किया जा सकेगा। **मार्विस** ने राँके की प्रशंसा में लिखा है कि इतिहास अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का सर्वाधिक योगदान **राँके** का है। **राँके**, ऐतिहासिक प्रत्यक्षवाद के जनक थे। उनके चिंतन को विज्ञान की उपलब्धियों तथा विचारकों और दार्शनिकों ने काफी प्रभावित किया था। स्रोतों पर आधारित इतिहास अध्ययन के अग्रणी तथा प्रबल समर्थक **बार्थोल्ड जार्ज नेबूर** ने **राँके** की वैज्ञानिक विधाओं की पृष्ठभूमि तैयार की थी। **राँके** ने **नेबूर** की तरह ग्रन्थालयों में पड़े हुए अनेक ऐतिहासिक स्रोतों को उजागर किया।

बर्लिन विश्वविद्यालय में इतिहास-शोध की विधाओं की शिक्षा के लिए राँके ने अनेक संगोष्ठियों का आयोजन किया था और शोध करने वाले छात्रों को नवीन तकनीक से अवगत कराया था। ऐतिहासिक शोध परम्परा को नया आयाम प्रदान किया गया। उनके सिद्धांतों का प्रसार जल्द ही फ्रांस और इंग्लैण्ड तक हो गया। **सी. जी. क्रम्प** के अनुसार, **"ऐतिहासिक विद्या के इतिहास में राँके का स्थान अद्वितीय है।"** इस प्रकार की शोध पद्धति का उनका सर्वप्रथम प्रयास था। इसी कारण उन्हें आधुनिक इतिहास का कोलम्बस तथा प्रत्यक्षवाद का जनक माना गया है। ऐतिहासिक शोध की वैज्ञानिक आधारशिला रखने वाले इतिहासकार **बार्थोल्ड जार्ज नेबूर** तथा **राँके** ही थे। इन्होंने भावी पीढ़ी के शोधकर्ताओं के लिए वैज्ञानिक विधियाँ प्रस्तुत कीं तथा प्रत्यक्षवाद की उपयोगिता को शोध में अपरिहार्य बना दिया। सन् 1559 में कुछ इतिहासकारों ने मिलकर एक ऐतिहासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया, जिसमें ऐतिहासिक शोध पर अनेक लेख प्रकाशित हुए। अल्प समय में ही सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत ने इस विधा को स्वीकार कर लिया।

काम्टे का प्रत्यक्षवादी सिद्धांत पूर्णतः विज्ञानवाद का आह्वान करता दिखाई देता है। प्रत्यक्षवाद एक दर्शन है, जो स्थूल या भौतिक साक्ष्यों को प्रमाणित नहीं की जा सकने वाली मनुष्य की भावपरक या परम्परापरक मान्यताओं को भी आधुनिक काल की अनेक असम्भव-सी समझी जाने वाली उपलब्धियों को देखकर यह धारण करता है कि वैज्ञानिक विधियों द्वारा उनके रहस्य को समझा तथा प्रकट किया जा सकता है। अतः प्रत्यक्षवादी आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य प्रकृति, समाज तथा अध्यात्मिकता के उन रहस्यों का पर्दाफाश करना था, जिनके फलस्वरूप भ्रांतिमूलक प्रवृत्तियों का समाज तथा अध्यात्मिकता के क्षेत्र में उद्भव तथा विकास हुआ। इसे वैज्ञानिक आन्दोलन भी कहा जा सकता है।

के सर्वाधिक प्रहार का लक्ष्य दर्शन तथा इतिहास था। वह आत्मा, परमात्मा तथा जगत के संबंध में दार्शनिकों द्वारा अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए गए। इसी बात से आगस्ट काम्टे ने समाजशास्त्र तथा प्रत्यक्षवाद को जन्म दिया था। उनका मानना है कि समस्त ब्रह्माण्ड अपरिवर्तनीय प्राकृतिक नियमों द्वारा नियंत्रित, व्यवस्थित तथा निर्देशित है। यदि हमें नियमों को समझना है तो तात्विक या धार्मिक आधारों पर नहीं अपितु परीक्षण, निरीक्षण तथा वर्गीकरण की व्यवस्थित कार्यप्रणाली द्वारा समझना चाहिए, क्योंकि विज्ञान की विधियों में कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है। **काम्टे** का कथन है कि **"इस विधि द्वारा न केवल प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन सम्भव है, अपितु समाज का अध्ययन भी सम्भव है।"**

निष्कर्ष (Conclusion)–काम्टे का प्रत्यक्षवाद एक वैचारिक प्रणाली है, जिसको विज्ञानवादी इतिहासकारों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्होंने जब प्रत्यक्षवाद का प्रतिपादन किया था तो उनका अभिप्राय था कि इतिहास तथा समाजशास्त्र में प्रत्यक्षवादी सिद्धांत का प्रयोग आवश्यक रूप से होना चाहिए। यह एक वैज्ञानिक विधा है, जिसका अभिप्राय यथार्थ तथ्यों के शोध तथा उसके आधार पर इतिहास-लेखन होना चाहिए। काम्टे ने स्वयं को भी धार्मिक तथा तात्विक विचारों से दूर रखा, क्योंकि इनका अध्ययन वैज्ञानिक विधि से सम्भव नहीं था। अतः इतिहास और समाजशास्त्र में उन्होंने प्रत्यक्षवादी प्रयोग विधि का प्रतिपादन किया। राँके ने इसी ऐतिहासिक प्रत्यक्षवाद को जन्म दिया और उन्होंने इतिहास शोध की विधाओं की शिक्षा का प्रसार किया। ऐतिहासिक प्रत्यक्षवाद की यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इसलिए राँके को इतिहास का कोलम्बस भी कहा गया। उन्होंने ऐतिहासिक शोध की यह आधारशिला रखी थी जो सदा के लिए इतिहासकारों को मार्गदर्शन देती रहेगी।

अथवा

इतिहास के अर्थ एवं क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
(Examine the meaning and scope of History.)

अथवा

ई. एच. कार के अनुसार इतिहास का क्या क्षेत्र है?
(What according to E. H. Carr, is the scope of History.)

उत्तर–इतिहास का क्षेत्र क्या है, यह भी इतिहास की परिभाषा की तरह एक अत्यन्त जटिल विषय है। अधिकतर इतिहासकार यह मानते हैं कि इतिहास का क्षेत्र सदैव एक जैसी निर्धारित सीमाओं में नहीं रहता, वरन् वह सदैव परिवर्तनशील रहता है। इतिहास का क्षेत्र यों तो **'अतीत काल के यथार्थ अंकन'** को ही मानना चाहिए क्योंकि यही इतिहास के क्षेत्र का मूल आधार है। परन्तु जिस तरह से इतिहास दर्शन की व्याख्या होनी आरम्भ हुई, उससे इतिहासकारों के दृष्टिकोण में मतभेद उत्पन्न होने आरम्भ हो गए। इस मतभेद का प्रभाव निर्धारित इतिहास के क्षेत्र पर भी दिखाई देने लगा। अब इसका क्षेत्र जिज्ञासा व विवाद का हिस्सा बनकर उभरने लगा। इतिहास के क्षेत्र के विविध पहलुओं को सबसे पहले हम विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं से समझने का प्रयास करेंगे, जो इस प्रकार हैं–

रोजर कोटे का कथन है, "इतिहास शुद्ध रूप से अतीत के महत्त्व से संबंधित था।"

राधा कुमुद मुखर्जी के अनुसार, "इतिहास केवल अतीत की कहानी है, न तो वर्तमान से इसका कोई संबंध है, न भविष्य से। यह यथार्थ तथ्यों का उल्लेख करता है, ऐसे तथ्यों का जो निश्चित तथा अपरिवर्तनीय हैं और इसका संबंध वर्तमान की घटनाओं और समस्याओं से या ऐसी गतिविधियों से जो प्रक्रियात्मक दशाएं हैं, कोई नहीं है, न इसका संबंध भविष्य की संभावनाओं या आशाओं से है।"

प्रो. ऐक्टन के अनुसार, "सभी उत्तम ऐतिहासिक कृतियाँ विश्वजनीन इतिहास हैं क्योंकि इसके अंश का अध्ययन करते समय ये सम्पूर्ण स्मरण कराती हैं। इतिहास के क्षेत्र को किसी एक विशेष वर्ग या दायरे में सीमित नहीं किया जा सकता है।"

डेवी ने इतिहास का क्षेत्र निर्धारित करते हुए उसका वर्गीकरण भी अपने ही ढंग से किया है। वे मानते हैं कि "इतिहास के क्षेत्र का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार सदैव विकसित होता रहता है।"

कार्ल मार्क्स ने इतिहास के क्षेत्र-विषय पर अपना पक्ष रखते हुए लिखा है कि "इतिहास के क्षेत्र की पहुँच साम्यवादी लोकतन्त्र तक है।"

ओबाल्ड स्पेंगलर ने लिखा है कि "इतिहास का क्षेत्र समाज व संस्कृतियों के अध्ययन से भी कोसों ज्यादा है। इसके क्षेत्र को शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता है। इसे तो मात्र महसूस व कल्पित किया जा सकता है।"

टॉयनबी ने, "इतिहास को सभ्यता की कहानी माना है।"

कालिंगवुड के विचारों में, "इतिहास का क्षेत्र मानव के चिन्तन का क्षेत्र है।"

प्रो. ई. एच. कार ने अतीत और वर्तमान के मध्य अनवरत परिसंवाद के रूप में कहकर इतिहास के क्षेत्र को व्यापक बनाने का प्रयास किया है।

प्रो. ए. एल. राऊज ने, "इतिहास के क्षेत्र को विस्तृत मानते हुए उसकी विषय-वस्तु के अन्तर्गत समाज के सभी पक्षों के वर्णन को माना है। जैसे–भौगोलिक-आर्थिक वातावरण, भूमि-व्यवस्था, उद्योग, व्यापार, प्रशासनिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा।"

इतिहासकारों के अनुसार समय, व्यक्ति, स्थान और घटना इतिहास के महत्त्वपूर्ण अंग हैं तथा वे इनको ही इतिहास का अध्ययन-विषय भी मानते हैं। अतः जिस विषय में इनका उल्लेख नहीं होता है, इतिहासकार उसे इतिहास नहीं मानते हैं। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, राजनयिकशास्त्र, सैनिकशास्त्र, विधिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयों के साथ इतिहास का संबंध स्थापित किए जाने के आधार पर कुछ विद्वानों की धारणा है कि इतिहास एक ऐसा विषय है, जिसका क्षेत्र बहुत व्यापक है, इतना व्यापक कि यह सभी विषयों का मुख्य स्रोत है। परन्तु मानक आधार पर इतिहास का क्षेत्र निर्धारित करना एक कठिन कार्य है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह माना जाता है कि समय के अनुसार इतिहास की विषय-वस्तु बदलती रही, जिसके कारण उसका आयाम भी सदैव बदलता रहा। विषय-वस्तु के संदर्भ में इतिहास की व्याख्या चिंतन में परिवर्तन हुआ मानें तो अधिक उपयुक्त होगा।

(A) इतिहास के क्षेत्र की अवधारणा *(Concept of the Scope of History)*

उपरोक्त कुछ कथन इतिहास के क्षेत्र को अतीतकालीन घटनाक्रम की सीमाओं में रखने की चेष्टा करते हैं, परन्तु सामाजिक व्यवहार में इनका इतना महत्त्व तो है ही कि मनुष्य अतीत को स्मरण कर अपने वर्तमान से उनकी तुलना करने लगता है तथा यदि अतीत गौरवमय है तो वह अपने भविष्य को उसी गौरव से युक्त करने की कल्पना या इच्छा भी करने लगता है, जो कुछ उसके पूर्वजों को प्राप्त था। यदि आज वह उससे वंचित है तो उसे भी वह प्राप्त करने की सोचता है। अतः वर्तमान के लिए मनुष्य की यही सोच इतिहास के क्षेत्र को वर्तमान के लिए भी तथा भविष्य के लिए भी निर्धारित कर देती है। भारत के सल्तनतकालीन और मुगल इतिहास में ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं कि विगत काल में दिल्ली के किसी सुल्तान ने कोई प्रदेश या राज्य अपने अधीन कर लिया था और बाद में यदि स्वतन्त्र हो गया तो उसके परवर्ती सुल्तान बराबर यह सोचते और प्रयत्न करते रहे कि वह पूर्व में विजित राज्य तो सल्तनत का ही भाग है। अतः उसे पुनः अपने अधीन करना उनका कर्तव्य है। बाबर ने हिन्दुस्तान में मुगल साम्राज्य की स्थापना की थी, जो हुमायूँ के हाथ से निकल गया था। परन्तु जब वह फिर हिन्दुस्तान में लौटा तो वह इसी भावना से लौटा कि दिल्ली तो मुगलों की ही है। यह तो राजनीतिक उदाहरण है, परन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष में भी इतिहास ऐसी ही भावनाओं के उद्रेक का कारण बनता है और भविष्य के निर्माण की प्रेरणा देता है। अतः प्रच्छन्न रूप में इतिहास का क्षेत्र वर्तमान तथा भविष्य को भी स्पर्श करता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक इतिहास के स्वरूप का निर्धारण ही वर्तमान की पीड़ा और भविष्य की आशा से निहित दर्शन से हुआ लगता है। इस प्रकार का दृष्टिकोण 17वीं, 18वीं और 19वीं सदी के दार्शनिकों ने प्रकट किया जिसका प्रभाव इतिहास को नवीन दर्शन देने का कारण बना। अन्यथा इतिहास जहाँ इसको इसके वर्तमान रूप में उद्गमित हुआ माना जाता है, अर्थात् यूनान में, ऐतिहासिक प्रपंच को महत्त्वहीन माना जाता था और उसे यथार्थ की छाया के रूप में स्वीकार किया जाता

था। इसी कारण यूनानी दार्शनिकों ने अपनी विचार-शक्ति का प्रयोग इतिहास-दर्शन के निर्माण में बहुत कम किया। यूनानी इतिहासकारों में **थ्यूसिडिडिज** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसने **'पेलोपोनेशियन युद्ध का इतिहास'** लिखा, परन्तु वह उसके क्षेत्र को अतीत से निकाल कर आगे नहीं लाया।

ईसाई धर्म की परम्परा में इतिहास एक प्रधान विषय के रूप में स्वीकार किया जाता है। यहूदी धर्म का प्रारम्भ ऐतिहासिक घटनाओं की समृद्धि के साथ हुआ। कुछ घटनाएँ यदि घटित ही नहीं होतीं तो यहूदी धर्म का आधार ही मिथ्या बन जाता। यहूदी धर्म के उत्तराधिकारी-रूप में ईसाई धर्म यह दावा करता है कि ईसा के रूप में यहूदी आस्था को पूर्णता प्राप्त हुई। **सन्त आगस्टाइन** ने पांचवीं शताब्दी में इतिहास दर्शन की रचना की थी। उन्होंने **'सिट ऑफ गॉड'** नामक कृति की रचना की, जिसमें उन्होंने लिखा कि इतिहास में दो नगर होते हैं–**मनुष्य का नगर या राज्य तथा ईश्वर का नगर या चर्च**। इतिहास की दृष्टि से इनमें भेद किया जा सकता है, लेकिन स्पष्ट रूप से इन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता, वस्तुतः यह इतिहास दर्शन का वह रूप था, जिसने राज्य को चर्च से नीचे रखने का कार्य किया। सम्पूर्ण मध्यकाल में आगस्टाइन की यही विचारधारा प्रभावी रही। आधुनिक काल में इतिहास के संबंध में नई विचारधारा के पैदा होने का श्रेय नवजागरण काल को जाता है। इसी विचारधारा ने आगस्टाइन द्वारा प्रतिपादित इतिहास के क्षेत्रीय आयाम बदल दिए। इस युग में इतिहास एक ऐसे दर्शन के प्रभाव से आक्रांत हुआ जो साक्ष्य और प्रत्यक्ष अनुभव मात्र को ही ज्ञान का प्रामाणिक आधार मानता था। इसके प्रतिनिधि इतिहासकारों में **वाल्टेयर** का नाम प्रसिद्ध है, जिसने **'लुई 14वां का युग'** नामक कृति की रचना की। उसने सांस्कृतिक तत्त्वों को राजनीतिक तत्त्वों से अधिक महत्त्व दिया। वाल्टेयर की ऐतिहासिक अवधारणा की हालांकि **किटी** तथा **हर्डर** ने कटु आलोचना की, परन्तु इतिहास के क्षेत्र में नए-नए आयामों के विकास रुक नहीं सके, क्योंकि अब विचारकों के पास अपनी विचारधारा को सामान्य जन तक पहुँचाने के लिए प्रैस जैसा साधन सुलभ था। उसके साथ सामाजिक मूल्य बदल रहे थे, जिनका अतीत से पूरी तरह भिन्न, राजनीतिक प्रभाव भी था। स्वाभाविक रूप से इतिहास राजनीति से जुड़ा हुआ है और राजनीति सामाजिक अपेक्षाओं की कर्णधार है। इतिहासकार इसी कारण अब जनता की राजनीति तथा इतिहास से जो अपेक्षाएं हैं उनकी विवेचना, ऐतिहासिक संदर्भों में करता है और उसे जो कुछ राजनीति और शासन चाहिए उसकी व्याख्या इतिहास के मूल्यों से करता है। इसी कारण इतिहास का क्षेत्र बहुत दूर तक उसके चारों ओर फैल जाता है। यह इतिहास की बदलती अवधारणाओं के कारण ही होता है। वर्तमान में विद्वानों ने इतिहास को मिश्रित रूप में मानव-समाज के जीवन का संकलन, व्यक्ति समूह की परिस्थितियों का अध्ययन, महान व्यक्तियों की आत्मकथा, मानव-जीवन के महान् कार्यों एवं असाधारण सफलताओं का संकलन, मानवीय विचारों, आदर्शों एवं महत्त्वाकांक्षाओं द्वारा निर्मित मनुष्य के सामाजिक (भौतिक तथा सांस्कृतिक) जीवन का अध्ययन माना है। अतः इन अवधारणाओं के कारण हमारे पास इतिहास के अध्ययन का वही (अतीत की घटनाओं का एक मात्र) आधार नहीं रह पाता।

(B) इतिहास के क्षेत्र का वर्गीकरण *(Classification of the Scope of History)*

प्राचीन काल से लेकर अब तक इतिहास का क्षेत्र निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। आज ऐसा माना जाता है कि इतिहास मानव जीवन की समस्त घटनाओं की कहानी है। मानव जीवन निरन्तर विकसित हो रहा है। इसी कारण इतिहास का क्षेत्र भी अतीत की तुलना में आज काफी विस्तृत हो चुका है। 19वीं शताब्दी के आरम्भ से पहले तक इतिहास को राजनीतिक घटनाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं तक ही सीमित माना जाता था। इसलिए जन-सामान्य की नजर में यह राजा-रानी की कहानी से अधिक नहीं था। परन्तु समकालीन समय में इतिहास का अर्थ, क्षेत्र तथा स्वरूप काफी हद तक बदल चुका है। आज इतिहास में मानव जीवन के समस्त पहलुओं का सकारात्मक अध्ययन किया जाता है। आज की ऐतिहासिक रचनाओं पर किसी तरह का कोई दरबारी नियन्त्रण नहीं है। आज निष्पक्ष तथा सकारात्मक इतिहास लेखन के लिए उचित माहौल तथा परिस्थितियाँ तैयार हो चुकी हैं। इतिहास के क्षेत्र का वर्गीकरण करना बहुत कठिन कार्य है। परन्तु फिर भी इतिहासकारों ने अतीत की घटनाओं के आधार पर इतिहास के क्षेत्र का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है, जिसका वर्णन इस प्रकार है–

राजनीतिक इतिहास (Political History)–अतीत से ही पूरे विश्व में राजनीतिक इतिहास लेखन की परम्परा रही है। इसका प्रमुख कारण यह रहा था कि अतीत में मानव जाति के विकास को राजाओं, राजनेताओं तथा राजनीतिक संस्थाओं ने काफी हद तक प्रभावित किया था। भारत में मानव जीवन के विकास में अशोक, अकबर, महात्मा गांधी आदि के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। ये तत्कालीन समाज में समाज के निर्माता तथा पथ-प्रदर्शक रहे थे। प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में दरबारी लेखन अपनी चरमसीमा को प्राप्त कर चुका था। इस काल में दरबारी कवि अपने शासक की प्रशंसा अतिशयोक्तिपूर्ण तरीके से अपने लेखन में करते थे। इसके लिए एक देशी कहावत का काफी प्रचलन था–'जिसकी खा बाकली उसके गाए गीत।' परन्तु फिर भी इस काल में कुछ महत्त्वपूर्ण राजनीतिक ऐतिहासिक रचनाओं की रचना की गई, जिनमें **हरिसेन का प्रयाग प्रशस्ति, गुलबदन बेगम का हुमायूँनामा व अबुल फजल का अकबरनामा** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परन्तु 20वीं शताब्दी के आरम्भ से ही इतिहास लेखन की यह शैली गुम होने लगी तथा इसके स्थान पर गैर-राजनीतिक इतिहास लेखन की शैली हावी होने लगी। इस विषय में **प्रो. झारखण्ड चौबे** ने लिखा है कि **"बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इतिहासकारों ने अनुभव किया कि महापुरुषों की जीवनी के साथ सर्वसाधारण मानव समाज के योगदान का अध्ययन भी आवश्यक है, क्योंकि जनसाधारण ही महापुरुषों की शक्ति होती है। उनके सहयोग से ही महान विभूतियों ने सफलता प्राप्त की। अतः राजनीतिक इतिहास में उनके कार्यों का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है।"** नवजागरण की ऐतिहासिक घटना तथा 1789 ई. की फ्रांसीसी क्रांति ने इतिहास की बदली सोच को काफी मजबूती प्रदान की। नेपोलियन का उग्र-राष्ट्रवाद तो इसके लिए मील का पत्थर साबित हुआ। इन सब के कारण राष्ट्रीय राजनीतिक इतिहास लेखन का दौर शुरू हुआ, जिसने विश्व के अधिकतर राज्यों की रूपरेखा ही बदल दी। इस राजनीतिक ऐतिहासिक परम्परा में राजा का महत्त्व कम होता गया तथा राष्ट्र का महत्त्व बढ़ने लगा। इन सबने मिलकर इतिहास के कार्य क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया।

सामाजिक इतिहास (Social History)–20वीं शताब्दी के आरम्भ में जिस तरह से राजनीतिक इतिहास लेखन का विषय बदल रहा था उसी तरह अब सामाजिक इतिहास लेखन के महत्त्व को भी स्वीकार किया जाने लगा था। यह भी अतिशयोक्ति न होगी कि इस शताब्दी में सामाजिक इतिहास लेखन इतिहासकारों का सर्वाधिक पसन्दीदा विषय रहा। **काम्टे** ने भी लिखा है कि **"इतिहास सामाजिक भौतिक शास्त्र होता है, जिसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का उल्लेख किया जाता है।"** अतीत के इतिहास लेखन में मनुष्य के रहन-सहन, खान-पान, पहनावे, मनोरंजन के साधनों आदि को कम ही महत्त्व दिया जाता था। यदि कभी-कभार इनका वर्णन मिलता भी है तो यह सिर्फ अभिजात वर्ग तक सीमित होता था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अतीत के इतिहास लेखन में सामाजिक अवस्था का कम ही वर्णन होता था। इस कारण से इतिहास का कार्यक्षेत्र काफी सिमटकर रह गया था। आधुनिक काल में सामाजिक इतिहास लेखन की शुरुआत जर्मन विद्वानों रील तथा फ्रेटेग द्वारा की गई। सामाजिक इतिहास लेखन का कार्य आज हमें जितना सरल दिखाई देता है, वास्तव में उतना सरल नहीं है क्योंकि उचित तथ्यों की कमी इसके लेखन में सबसे बड़ी बाधा है। भारत के सामाजिक इतिहास लेखन का कार्य तो और भी ज्यादा कठिन है क्योंकि भारत में अनेक देशी तथा विदेशी जनजातियाँ निवास करती हैं जिनकी परम्पराएं तथा रीति-रिवाज एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त भारत अनेक धर्मों में आस्था रखने वाला देश है, जिस कारण सामाजिक इतिहास लेखन सदैव विवादों का विषय बना रहता है। 20वीं शताब्दी के आरम्भ में सामाजिक कुरीतियों पर काफी इतिहास लिखा गया। भक्ति तथा सूफी आन्दोलन ने भी भारत में सामाजिक इतिहास लेखन को बढ़ावा दिया। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, ज्योतिबा फूले, महात्मा गांधी आदि के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। भारत में सामाजिक इतिहास लेखन का मुख्य विषय सामाजिक कुरीतियां रहीं। इन सब कारणों ने मिलकर इतिहास के कार्य-क्षेत्र को काफी विस्तृत कर दिया।

आर्थिक इतिहास (Economic History)–इतिहास की ऐतिहासिक लेखन परम्परा में आर्थिक इतिहास को लोकप्रिय बनाने में काम्टे, एडम स्मिथ, हिरेन, कोदोरेसे तथा वर्कले जैसे महान इतिहासकारों तथा अर्थशास्त्रियों के योगदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। कार्ल मार्क्स के उदय तथा उसके विचारों ने तो आर्थिक इतिहास लेखन में क्रांति ला दी थी। कार्ल मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक स्वरूप की व्याख्या इस तरह की कि सारा विश्व उनका मुँह ताकने लगा था। उनके प्रयासों के कारण अब इतिहास लेखन में आर्थिक विधियों को भी शामिल किया जाने लगा। **एडम स्मिथ** की पुस्तक **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** विशुद्ध रूप से एक आर्थिक ऐतिहासिक रचना थी। 'अधिकतम सुख' की अवधारणा इतिहास लेखन पर हावी होने लगी थी। उन आर्थिक गतिविधियों को इतिहास लेखन में अधिक महत्त्व दिया जाने लगा, जिनसे व्यक्ति को अधिकतम सुख की प्राप्ति हो सके। कृषि का वाणिज्यकृत रूप भी इतिहास लेखन में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल कर चुका था। आधुनिक आर्थिक इतिहास का संबंध मानवीय आजीविका के साधनों से अधिक है। आर्थिक इतिहास के विकास में हम जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान हिरेन के योगदान को कभी नहीं भुला सकते हैं। **रोजर्स, लिप्सन, एशले, कनिंघम** आदि 19वीं शताब्दी के महान आर्थिक इतिहासकार थे। इस शताब्दी में उनके प्रयासों से आर्थिक इतिहास लेखन का काफी विकास हुआ। 20वीं शताब्दी में तो आर्थिक इतिहास लेखन ने और भी ज्यादा गति प्राप्त कर ली थी। व्यापार-वाणिज्य, कृषि, उद्योग, बैंकिंग व्यवस्था, श्रम-व्यवस्था आदि पर जमकर आर्थिक इतिहास लिखा गया। इस काल की आर्थिक इतिहास की मुख्य पुस्तकों में **दादाभाई नौरोजी** की **पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इंडिया, आ. सी. दत्त** की **इकॉनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, विपिनचन्द्र पाल** की **भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव व विकास, तिरथांकर राय** की **इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया** शामिल थीं। इन पुस्तकों में ब्रिटिश आर्थिक शोषण पर जमकर प्रहार किया गया। **रजनी पामदत्त, हिरेन मुकर्जी, इरफान हबीब, डी. डी. कौशाम्बी** इस काल के अन्य प्रसिद्ध भारतीय आर्थिक इतिहासकार थे। भारत में आर्थिक इतिहास लेखन से भारतीय राष्ट्रवाद को एक नयी शक्ति तथा पहचान प्राप्त हुई।

धार्मिक व सांस्कृतिक इतिहास (Religious and Cultural History)–आधुनिक इतिहासकारों ने समाज के प्रत्येक पहलू पर अपना लेखन का कार्य किया है। धार्मिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी आज काफी ऐतिहासिक शोध कार्य हो रहे हैं। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आजकल सांस्कृतिक इतिहास लेखन पर सबसे ज्यादा बल दिया जा रहा है। आज इतिहास प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक सांस्कृतिक परम्पराओं का एक दर्पण बनकर हमारे सामने प्रस्तुत है। रीति-रिवाज, शिक्षा, साहित्य, संस्कार, वास्तुकला, चित्रकला, संगीत कला, मनोरंजन के साधनों जैसी विषय-वस्तु आधुनिक सांस्कृतिक इतिहास के मुख्य तत्त्व हैं। सांस्कृतिक इतिहास लेखन को इतिहासकार कई प्रकार से वर्गीकृत करते हैं। कुछ इतिहासकार इस इतिहास को प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक इतिहास के रूप में विभाजित करते हैं तो कुछ इसे मौर्यकाल, गुप्तकाल, हर्षकाल, सल्तनतकाल, राजपूत काल, मुगल काल व औपनिवेशिक शासन काल के रूप में विभाजित करते हैं। सांस्कृतिक इतिहास लेखन इतिहास का एक बहुत ही नाजुक विषय है। इसलिए इसके लेखन में अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता होती है। तथ्यों का सही व निष्पक्ष वर्णन करना ही इस विषय के साथ न्याय कर सकता है। सांस्कृतिक इतिहास लेखन की तरह ही आज के दौर में विभिन्न धर्मों के विविध पहलुओं पर अनेक प्रकार का लेखन कार्य हो रहा है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है तथा यहाँ अनेक धर्म (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जैनी, बौद्ध) समान तथा स्वतन्त्रतापूर्वक प्रचलित तथा कायम हैं। इसलिए धार्मिक इतिहास के लेखन में लोगों की धार्मिक भावनाओं का अवश्य ख्याल रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त धार्मिक इतिहास लेखन में इस बात का सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए कि भारत के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को किसी प्रकार की चोट न पहुँचे। धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास लेखन ने इतिहास के कार्यक्षेत्र को असीमित स्वरूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

राजनायिक व सैन्य इतिहास (Diplomatic and Military History)–इतिहास लेखन की राजनायिक परम्परा का चलन 19वीं शताब्दी से ही आरम्भ हो गया था। इस तरह के इतिहास लेखन में विभिन्न राष्ट्रों के साथ कूटनीतिक संबंधों पर लेखन कार्य किया जाता है। इस तरह का अधिकतर लेखन गोपनीय दस्तावेजों के रूप में होता है। इस तरह के लेखन की विषयवस्तु में सेना (जल, वायु, थल), अस्त्र-शस्त्र

का निर्माण तथा कूटनीतिक संबंध शामिल होते हैं। इस तरह की सबसे पहली पुस्तक **'पेलोपोनिशियन का युद्ध'** थी, जिसकी रचना यूनानी इतिहासकार **थ्यूसिडिडिज** द्वारा की गई थी। इसके अतिरिक्त **क्लैरेंडन** द्वारा रचित **'महान गृहयुद्ध'** भी इसी प्रकार की साहित्यिक रचना थी। **'विश्व युद्ध का जन्म'** जो **एस. वी. के.** द्वारा रचित है को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। इतिहास में आज भी सैन्य तथा राजनायिक विषयों पर काफी शोध कार्य हो रहे हैं, क्योंकि इतिहास गवाह है कि किस तरह सिकन्दर, चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, चाणक्य, बाबर, नेपोलियन, हिटलर तथा मुसोलिनी ने अपनी सैन्य तथा राजनीतिक कूटनीति से तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश को काफी हद तक बदल दिया था। आज इस तरह के ऐतिहासिक लेखन में परमाणु शस्त्रों के इस्तेमाल पर गहरी चिंता व्यक्त की जाती है। **रेनियर** के अनुसार, **"आधुनिक इतिहासकारों का प्रमुख कर्तव्य है कि वे नैतिकता की दृष्टि से इन नए अस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाएँ ताकि भावी पीढ़ी को भयंकर विनाश से बचाया जा सके।"** वास्तव में इतिहास एक ऐसा विषय है जिसमें मानव जीवन से संबंधित प्रत्येक पहलू को शामिल किया जाता है। इस कारण इसके कार्यक्षेत्र को किसी सीमा में बांधना कोई सरल कार्य नहीं है।

औपनिवेशिक इतिहास (Colonial History)–यूरोप में सबसे पहले औद्योगिक क्रांति का उदय तथा विकास हुआ। इस कारण यूरोपीय देशों को अपने बड़े उद्योगों में कच्चे माल की ज्यादा आवश्यकता महसूस हुई। स्वयं यूरोप इस आवश्यकता को पूरा करने में पूरी तरह असमर्थ था। इसलिए इन यूरोपीय देशों ने इसे प्राप्त करने के लिए एशिया और अफ्रीका के साथ अपने व्यापारिक संबंध स्थापित किए। धीरे-धीरे वहां की परिस्थिति को अपने वश में करके उन्होंने अपने औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर लिए। इस औपनिवेशिक शोषण से छुटकारा पाने के लिए इन गुलाम देशों में लंबे राष्ट्रवादी आन्दोलनों का उदय हुआ। इन्हीं राष्ट्रवादी आन्दोलनों को गति प्रदान करने के लिए राष्ट्रवादी नेताओं व इतिहासकारों द्वारा औपनिवेशिक इतिहास लेखन पर काफी कार्य हुआ। इसी तरह औपनिवेशिक शक्तियों की ओर से भी अपने पक्ष में इसी तरह के इतिहास लेखन का सहारा लिया गया। साम्राज्यवादी विचारधारा से आज विश्व के सभी राष्ट्र मुक्त हो चुके हैं, परन्तु आज भी इन शोषित देशों के इतिहास में औपनिवेशिक शासन के विविध पहलुओं पर अनेक शोध कार्य हो रहे हैं। इसलिए हम इतिहास को किसी विशेष तथा सीमित दायरे में नहीं रख सकते हैं।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि इतिहास विषय की प्रकृति इस तरह की नहीं है कि उसे किसी एक गोल दायरे में सीमित किया जा सके। यह अतिशयोक्ति न होगी यदि हम यह कहे कि इतिहास सब अन्य विषयों की जननी है अर्थात् सभी विषयों की उत्पत्ति इतिहास से ही हुई है। इतिहास एक ऐसा विषय है जिसका संबंध मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से है। इसलिए इसके क्षेत्र को निर्धारित सीमा में रखना कठिन ही नहीं, अपितु लगभग असंभव है।

अथवा

सामाजिक घटनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन में समस्याओं की विवेचना कीजिये।
(Discuss the main problems in the scientific study of social phenomena.)

अथवा

सामाजिक घटना क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करो।
(What is social phenomena? Describe its main characteristics.)

उत्तर–मानव समाज मानवीय सम्बन्धों और सह सम्बन्धों का जितना अनोखा ताना-बाना है उतना और कोई भी अन्य समाज नहीं। यहां तो साधु और शैतान, राजा और रंक सब साथ-साथ रहते हैं। इसी मानव समाज में जातिवाद से लेकर प्रजातिवाद तक है, यहां खेलकूद से लेकर साम्प्रदायिक दंगे-फसाद तक हैं। और

यहीं पर निरक्षरता, अज्ञानता के घोर अन्धकार से लेकर शिक्षा-दीक्षा और ज्ञान का जगमगाता हुआ प्रकाश भी है। ये सब कुछ हैं और इन सब कुछ को लेकर ही सामाजिक घटनाओं की प्रकृति का निर्धारण होता है। ये सामाजिक घटनाएँ ही सामाजिक वैज्ञानिक के अनुसन्धान और सर्वेक्षण के विषय हैं। अतः इनकी वास्तविक प्रकृति को भली-भाँति समझ लेना बहुत आवश्यक है।

घटनाओं की प्रवृत्ति (Nature of Phenomenas)–विज्ञान घटनाओं का अध्ययन है। घटनाओं की प्रकृति की जाँच कर लेना वैज्ञानिकों के लिए आवश्यक होता है। ये घटनाएँ मोटे तौर पर दो प्रकार की होती हैं–प्राकृतिक घटनाएँ और सामाजिक घटनाएँ। इन दोनों प्रकार की घटनाओं की प्रवृत्ति एक समान नहीं है। प्राकृतिक घटनाओं में नियमितता, निश्चितता, समानता, वस्तुनिष्ठता आदि की विशेषताएँ पाई जाती हैं और इसीलिए इन घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन यथार्थ और अध्ययन-निष्कर्ष निर्भर योग्य होते हैं। अपने वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर मनुष्य ने प्रकृति पर बहुत कुछ विजय प्राप्त कर ली है। पर अति आश्चर्य की बात तो यह है कि वह मानव जिसने प्राकृतिक और भौतिक दुनिया पर विजय प्राप्त कर ली है, वह खुद अपनी ही दुनिया अर्थात् समाज में चकरा जाता है, अपने ही सामाजिक सम्बन्धों के बारे में स्वयं निश्चित नहीं हो पाता है ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध और घटनाएँ जटिलता, परिवर्तनशीलता, व्यक्तिनिष्ठता और गुणात्मकता की एक अजीब दुनिया है। इससे घबराकर ही कुछ विद्वानों ने यह घोषणा कर दी कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन पद्धति द्वारा सम्भव नहीं है और इसीलिए यथार्थ सामाजिक नियमों का प्रतिपादन भी नहीं किया जा सकता। अब हम इन शिक्षकों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हैं।

सामाजिक घटनाओं की प्रकृति और समाज विज्ञान (Nature of Social Phenomenas and Social Science)–कुछ विद्वानों का कथन है कि सामाजिक घटनाओं में पाई जाने वाली जटिलता, परिवर्तनशीलता, व्यक्तिनिष्ठता आदि अनेक बाधायें हैं। इन्हें लाँघना वैज्ञानिक पद्धति के लिए सम्भव नहीं होता इसीलिए समाजशास्त्र के लिए यह भी सम्भव नहीं होता है कि वह यथार्थ सामाजिक नियमों को प्रतिपादित करे। इस कथन में कुछ सच्चाई अवश्य है लेकिन इसमें भ्रान्त-धारणा भी शामिल है। इन भ्रान्त धारणाओं के आधार हैं–एक तो यह कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति को तोड़-मोड़ कर देखने और उसकी प्रकृति पर नियन्त्रण पाने के सम्बन्ध में विज्ञान की शक्ति को न समझने की प्रवृत्ति और दूसरी है वैज्ञानिक नियम की वास्तविक प्रकृति को गलत समझना। सामाजिक घटनाओं में जटिलता, विविधता, व्यक्तिनिष्ठता आदि विशेषताएँ हैं, परन्तु ये कोई ऐसी अड़चनें नहीं हैं कि जिन्हें विज्ञान कभी जाँच ही नहीं सकता हो। समाज विज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान है और अपनी प्रगति के साथ-साथ अड़चनों को दूर करना उसके लिए सरल होता जा रहा है। वैज्ञानिक नियम के अर्थ के सम्बन्ध में एक गलत धारणा यह है कि वैज्ञानिक नियम समस्त अवस्थाओं में अनियन्त्रित व्यवहार का एक यथार्थ कथन है। परन्तु वास्तव में वैज्ञानिक नियम इस प्रकार का कुछ भी नहीं है। वैज्ञानिक नियम केवल यह बताता है कि कोई घटना वर्णित अवस्थाओं में किस प्रकार का व्यवहार करती है। सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में भी इस प्रकार का कथन या नियम सम्भव है। तीसरी गलत धारणा यह है कि वैज्ञानिक नियम सदा यथार्थ रूप में व्यवहार की व्याख्या है। परन्तु वास्तव में वैज्ञानिक नियमों की यथार्थता मानव के ज्ञान के स्तर से सम्बद्ध होती है। किसी विषय के सम्बन्ध का नया ज्ञान अनेक पुराने 'यथार्थ नियमों' को गलत प्रमाणित कर देता है। सामाजिक घटनाओं से सम्बद्ध नियमों पर भी यही नियम लागू होता है।

सामाजिक घटना का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Social Phenomena)– सामाजिक घटना दो शब्दों से मिलकर बना है–सामाजिक + घटना। सामाजिक का संबंध सामाजिक संबंधों से है, घटना का संबंध ऐसे तथ्यों से है जिनमें परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार शाब्दिक अर्थों में सामाजिक घटना से अभिप्राय सामाजिक संबंधों से निर्मित होने वाले सामाजिक तथ्यों की परिवर्तनशीलता दर्शाने से है। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक घटनाओं को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है–

सत्यपाल रुहेला ने अपनी कृति **'सामाजिक सर्वेक्षण : एक नई रूपरेखा'** में सामाजिक घटना के बारे में लिखा है कि "मानवीय जीवन में घटित होने वाली घटनाओं, व्यवहार के तरीकों, प्रवृत्तियों, प्रक्रियाओं, संबंधों

को सामाजिक घटनाक्रम कहा है। सभी रीति-रिवाज, विवाह, जन्मोत्सव, मृत्युभोज, तलाक, नौकरी लगना, शासन, शिक्षण, सीखना आदि सभी कार्य सामाजिक घटनाक्रम के रूप में होते हैं। एक सामाजिक प्राणी अथवा समाज के सदस्य होने के नाते एक मनुष्य और सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक घटनाक्रम को बनाते हैं।

आनंद के अनुसार, "सामाजिक जीवन के अंतर्गत किसी भी सामाजिक तथ्य को सामाजिक घटना कहा जाता है यदि यह सामाजिक जीवन एवं सामाजिक सम्बन्धों के क्रम को कम या ज्यादा मात्रा में प्रमाणित करता है।

डॉ. जे. डी. जैन के अनुसार, "सामाजिक घटना से हमारा अभिप्राय सामाजिक हितों से सम्बन्धित घटनाओं, तथ्यों एवं वृतान्तों का व्यवस्थित वर्णन एवं व्याख्या है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सामाजिक घटना से हमारा अभिप्राय उन घटनाओं से है जो मनुष्यों के चेतन एवं अचेतन प्रयासों के परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में घटती हैं। इससे हम व्यवहार के तरीकों, प्रक्रियाओं, सामाजिक परिस्थितियों, मूल्यों, वस्तुओं, परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों में शामिल कर सकते हैं।

सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की विशेषताएँ (Characteristics of the Nature of Social Phenomena) *अथवा* **सामाजिक प्रघटना के अध्ययन में पद्धति शास्त्रीय समस्याएँ (Methodological Problems in the Study of Social Phenomenas)**–सामाजिक अध्ययन की कमियों के कारण कुछ विचारकों का मत है 'सामाजिक अध्ययन विज्ञान बनना सम्भव नहीं है। सामाजिक विज्ञान के आलोचकों के तर्कों की एक-एक करके व्याख्या की जाएगी।

(1) प्रयोग करने में कठिनाई (Difficulty in use)–सामाजिक विज्ञान की एक समस्या यह है कि इसमें नियन्त्रित प्रयोगों की सम्भावना बहुत कम है। जैसा प्रयोग प्राकृतिक वस्तुओं या पशुओं के साथ कर सकते हैं वैसा प्रयोग मनुष्य समाज पर मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता यद्यपि सामाजिक विज्ञान में नियन्त्रित प्रयोगों की सम्भावना कम है फिर भी यह समझना कि समाज का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से नहीं हो सकता, भूल होगी। बहुत से प्राकृतिक विज्ञान नियन्त्रित प्रयोगों पर आधारित नहीं होते। आधुनिक सांख्यिकी के उपयोग से नियन्त्रित प्रयोगों की आवश्यकता कुछ सीमा तक कम हो गई है। सामाजिक विज्ञानों में प्रयोगों की सम्भावनाएँ हैं ही नहीं यह कहना गलत होगा, कतिपय प्रयोग प्रयोगशालाओं में भी किये जाते हैं। जैसे अमेरिकन प्रयोगशाला में किए गए एक प्रयोग में यह पाया गया कि मतदाता पर उम्मीदवार के धर्म का प्रभाव पड़ता है। इसके अध्ययनों में जहाँ कि मतदाताओं के साथ साक्षात्कार किया गया, यही परिणाम निकला। राजनीतिशास्त्र के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण खोज है। सामाजिक विज्ञानों में होने वाले शोध अधिकतर प्रयोगात्मक नहीं होते। यह शोध इस प्रकार किया जाता है कि प्रयोगात्मक न होते हुए यह नियन्त्रित अनुभवाश्रित शोध की शर्तों को जहाँ तक हो सके, पूरा कर सकें। राजनीति विज्ञान में इस प्रकार के शोध द्वारा मतदान, विधानमण्डल के सदस्यों के व्यवहार, राजनीतिक दलों, राजनीतिक संस्कृति आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त हुआ है।

(2) सांस्कृतिक सापेक्षता (Cultural Relativism)–सामाजिक विज्ञान के मार्ग में एक बड़ी बाधा यह है कि सामाजिक घटनाएँ काल द्वारा अनुबन्धित और संस्कृति द्वारा निर्धारित होती हैं। यहां प्रश्न यह है कि यदि देश और काल के भेद से सामाजिक स्थितियाँ एक दूसरे से बहुत भिन्न हो जाती हैं तो सार्विक नियम किस प्रकार बन सकते हैं। सार्विक नियमों के अभाव में विज्ञान नहीं बन सकता। इस आलोचना में सच्चाई है। विभिन्न समाजों में परम्परा के भेद होते हैं। पृथक् समाजों में एक ही कार्य के पृथक् रूप हो सकते हैं। परन्तु यह सोचना कि सांस्कृतिक सापेक्षता के कारण सार्विक नियम बनाना असम्भव है, भूल होगी। भेदों के साथ-साथ विभिन्न समाजों में कुछ समानताएं भी होती हैं। विज्ञान का उद्देश्य ये समानताएँ ढूँढना है। समानताओं के अध्ययन द्वारा जो अमूर्त नियम बनते हैं वे असमानताओं की व्याख्या करने में सफल होते हैं। सम्भव है कि सामाजिक विभिन्नताओं की व्याख्या नए व्यापक सिद्धान्तों द्वारा हो सके।

(3) सामाजिक घटनाओं पर ज्ञान का प्रभाव (Influence of Knowledge of Social Phenomena) –सामाजिक विज्ञान के मार्ग में एक और समस्या पैदा होती है कि इसमें हम मनुष्यों के व्यवहार का अध्ययन करना चाहते हैं, परन्तु मनुष्य का व्यवहार बदलता रहता है। फिर अध्ययन में उनके व्यवहार का सही ज्ञान हमें किस प्रकार प्राप्त हो सकता है। परन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि यह केवल सामाजिक विज्ञान की समस्या नहीं बल्कि प्राकृतिक विज्ञान की भी समस्या है। प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में यह पाया जाता है कि माप के उपकरण जिस चीज का माप कर रहे हैं स्वयं उसे घटा-बढ़ा देते हैं। हमें देखना यह है कि इस समस्या का सामना कैसे किया जाए। वास्तव में सब विधियाँ और उपकरण एक जैसी समस्या पैदा नहीं करते। हमें उनका ऐसा चुनाव करना चाहिए जिससे वह समस्या कम से कम पैदा हो। इस समस्या का दूसरा पहलू भविष्य के विषय में हमारे अनुमानों से सम्बन्धित है। वैज्ञानिक अध्ययन में प्रागुक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है और कभी-कभी इसे विज्ञान का एक लक्षण माना जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि सार्विक वैज्ञानिक नियम हमें ज्ञात हों तो इनके आधार पर हमें भविष्य में होने वाली घटनाओं का अनुमान लगाना चाहिए। प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में भविष्य कथन किया जा सकता है किन्तु सामाजिक विज्ञान की समस्या यह है कि यदि व्यक्तियों को यह मालूम हो जाये कि आगे क्या होने वाला है तो अपना व्यवहार उसके अनुसार बदल लेते हैं और परिणामस्वरूप विषय की घटना प्रभावित हो जाती है। इस कारण सामाजिक विज्ञान के अध्ययन में समस्या अवश्य पैदा होती है लेकिन सार्विक नियमों का बनना असम्भव नहीं हो जाता। वास्तव में भविष्य-कथन का अर्थ है नियमों को किसी विशेष स्थिति में लागू करना। किसी भी कार्य के बहुत से कारण होते हैं। इसलिए किसी घटना को पूरी तरह समझने के लिए बहुत से नियमों को एक साथ लागू करना होता है। भविष्य-कथन की जानकारी स्वयं एक कारक है। इसके प्रभाव का अध्ययन भी सामाजिक विज्ञान का अंग है। भविष्य कथन करते समय यदि इसकी जानकारी के प्रभाव का ध्यान रखा जाए तो उसकी प्रामाणिकता बढ़ जाएगी।

(4) सामाजिक प्रघटना की व्याप्तनिष्ठा (आत्मनिष्ठ) प्रकृति (Subjective Nature of Social Phenomena)–समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के मार्ग में एक और समस्या यह बताई जाती है कि उसकी विषय-वस्तु आत्मनिष्ठ होती है। आत्मनिष्ठ का अर्थ है जो खुद व्यक्ति से उपजे या व्यक्ति से सम्बन्धित हो। जैसे हमारे उद्देश्य, लक्ष्य, मूल्य, इच्छाएं, अभिवृत्तियाँ सभी आत्मनिष्ठ हैं जबकि बाहरी जगत जिसमें हम रहते हैं, वस्तुनिष्ठ हैं। सामाजिक विज्ञान में मनुष्यों के परस्पर व्यवहार का अध्ययन होता है और यह कहा जाता है कि यह व्यवहार बहुत कुछ आत्मनिष्ठ होता है। जैसे मनुष्य के कार्य किसी उद्देश्य से होते हैं। परन्तु विज्ञान केवल विषयनिष्ठ वस्तुओं का अध्ययन कर सकता है, आत्मनिष्ठ वस्तुओं का नहीं, फिर समाज के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति किस प्रकार लागू की जा सकती है। इस आलोचना का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि मानवीय व्यवहार के दो पहलू हैं–आत्मनिष्ठा और विषयनिष्ठा। जैसे लड़ाई का आत्मनिष्ठ पहलू है क्रोध का संवेग और विषयनिष्ठ पहलू हाथापाई करना। दो व्यक्तियों में लड़ाई हो तो हम उनके भावों को सीधे नहीं जान सकते, हाथापाई के रूप में उनका प्रकट व्यवहार देख सकते हैं। यह प्रकट व्यवहार सामाजिक सम्बन्धों का भाग है और इसका अध्ययन समाज के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। दूसरे यह सोचना भूल है कि आत्मनिष्ठ और विषयनिष्ठ व्यवहार हमेशा भिन्न और असम्बद्ध हैं। वास्तव में दोनों में गहरा पारस्परिक सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। हमारे उद्देश्य, मूल्यों, आशाओं, अभिवृत्तियों–सभी का हमारे व्यवहार पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है। मनोविज्ञान व्यवहार के इन दो पहलुओं के सम्बन्ध पर अधिकाधिक प्रकाश डाल रहा है। इस कारण प्रकट व्यवहार के अध्ययन से हमें आत्मनिष्ठ व्यवहार और उस पर आधारित सामाजिक सम्बन्धों को समझने में सहायता मिलती है। जिन भौतिक परिस्थितियों में हम रहते हैं और प्रौद्योगिक (अर्थात् औजार, हथियार आदि) हम प्रयुक्त करते हैं, हमारे व्यवहार के विषयनिष्ठ अंग हैं और हमारे आत्मनिष्ठ व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं। इस कारण विषयनिष्ठ व्यवहार के अध्ययन से आत्मनिष्ठ व्यवहार समझने में सहायता मिलती है।

(5) समरूपता का अभाव (Lack of Homogeneity)–सामाजिक घटनाओं की एक अन्य विशेषता यह है कि कोई भी दो इकाइयाँ समान नहीं होतीं। इस समरूपता के अभाव के कारण भी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग यथार्थ रूप में नहीं हो पाता है। परन्तु समाज का गहराई से अध्ययन करने वाले सामजशास्त्री यह स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि समाज में समानताएँ और भिन्नताएँ दोनों ही निहित हैं। समाज के निर्माण और व्यवस्था के लिए समानता का होना बहुत आवश्यक है क्योंकि समानता के आधार पर ही सामाजिक सम्बन्ध पनपता है और सामाजिक सम्बन्धों से ही समाज का निर्माण होता है। सतर्क अध्ययन करने पर एक विशेष प्रकार की सामाजिक घटनाओं की विभिन्न इकाइयों में पाई जाने वाली समानता को ढूंढ़ा जा सकता है। साथ ही सामाजिक जीवन में पाई जाने वाली विभिन्नताओं का भी कोई दोष नहीं हैं। यदि मानव समाज में केवल समानता ही पाई जाती है तो हम लोगों का सामाजिक जीवन भी उतना ही सीमित और संकुचित हो जाता जितना कि मधुमक्खियों का जीवन है। हम ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते जहाँ सभी लोग एक ही आकार के, एक ही दिमाग के, एक ही व्यवसाय से सम्बन्धित होते। अतः सामाजिक घटनाओं की समरूपता या असमरूपता के चक्कर में न पड़कर सामाजिक वैज्ञानिकों को ऐसी उन्नतशील प्रविधियों को खोज निकालने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि सामाजिक जीवन में अन्तर्निहित समानता और असमानता दोनों का ही वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव हो सके। यह तर्क भी गलत है कि भौतिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन अधिक यथार्थ इसलिए होता है क्योंकि भौतिक घटनाओं में समरूपता होती है। पूर्ण समरूपता की कल्पना ही आवस्तविक है। यहां तक कि मशीनों द्वारा बनी चीजों में भी पूर्ण समरूपता असम्भव है। अतः समरूपता का अभाव स्वाभाविक है और किसी भी विज्ञान में इसका होना उसकी वैज्ञानिक प्रकृति के प्रतिकूल नहीं है। इस अर्थ में समाजशास्त्र की समस्या अन्य किसी भी विज्ञान की समस्या से भिन्न नहीं है। यदि डॉक्टर मरीज का इलाज करते समय और दी हुई दवाओं की प्रक्रिया को समान रखते हुए इलाज बदलता रहता है। इस पर भी कोई यह नहीं कहता कि डॉक्टर एक वैज्ञानिक नहीं है और वह वैज्ञानिक विधि को अपना नहीं रहा है। इसलिए इस आधार पर कि सामाजिक घटनाओं में समरूपता का अभाव है केवल समाजशास्त्र की या उसकी अध्ययन पद्धति को वैज्ञानिक क्यों न माना जाए।

(6) सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव (Lack of Universality in Social Phenomena)–वैज्ञानिक अध्ययन के दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं की एक और कमी यह है कि उनमें सार्वभौमिकता का अभाव है, जबकि सार्वभौमिकता भौतिक घटनाओं की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उदाहरण के लिए, आग में जलाने की शक्ति सार्वभौम है। पर यह गुण सामाजिक घटनाओं में देखने को नहीं मिलता। उदाहरण के लिए, विद्यार्थी में अनुशासित व्यवहार करने का गुण सार्वभौम नहीं है। एक डकैत निर्दयी ही होगा ऐसी बात नहीं वह दयालु भी हो सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाजशास्त्री सामाजिक व्यवहार के सम्बन्ध में भी निष्कर्ष निकालता है वह यथार्थ नहीं हो पाता है। दूसरे शब्दों में, उसके द्वारा प्रतिपादित नियम उस तरह सार्वभौमिक सत्य नहीं होते जैसे प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों में होता है। आरोप लगाने वाले विद्वान् शायद वैज्ञानिक नियम का गलत अर्थ लगाते हैं। वैज्ञानिक नियम वह नियम नहीं है जो कि सभी अवस्थाओं में और सभी संस्थानों में समान रूप से लागू होगा। इस प्रकार सार्वभौम और अन्तिम वैज्ञानिक नियम की कल्पना शायद ही की जा सकती है। वैज्ञानिक नियम हमेशा कुछ निर्दिष्ट अवस्थाओं में ही लागू होता है।

(7) सामाजिक अध्ययन पर मूल्यों का प्रभाव (Influence of values on Social Studies)–मूल्यों का सम्बन्ध जो आज है उससे कम होता है, इनका सम्बन्ध मुख्य रूप में जो होना चाहिए, उससे ज्यादा होता है। मूल्य नैतिक औचित्य को प्रकट करते हैं। व्यक्तियों के मूल्य समान या अलग अलग हो सकते हैं। कोई त्याग को महत्त्व देता है तो कोई सुख को। अमेरिकन समाज में इन्द्रिय सुख आज इतना महत्त्वपूर्ण है उतना भारत में नहीं। मूल्यों के इन भेदों के कारण अमेरिका भारत को पिछड़ा हुआ देश कहता है तो भारत अमेरिका को गिरा हुआ देश कहता है। मूल्यों के इन भेदों के कारण, मूल्यांकन भी अलग-अलग होगा। अब समस्या यह पैदा होती है कि सामाजिक अनुसन्धानकर्ताओं के मूल्यों में विभिन्नता के कारण मूल्यांकन

भी अलग-अलग होगा। ऐसी हालत में विश्वसनीय ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया जाए? प्रश्न उठता है कि क्या मूल्यरहित सामाजिक विज्ञान हो सकता है या नहीं। सामाजिक विज्ञान के आलोचकों का कहना है कि सामाजिक अध्ययन सदा मूल्यों से प्रभावित होता है, इसलिए यह विज्ञान नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामाजिक अध्ययन के विषयों के चुनाव पर मूल्यों का प्रभाव पड़ता है। यह कहना ठीक है कि अध्ययन के विषयों का चुनाव मूल्यों के आधार पर होता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इन अध्ययनों के निष्कर्ष भी मूल्यों से प्रभावित होते हैं। निष्कर्ष निकालने में यदि वैज्ञानिक पद्धति प्रयोग हुई हो तो वह विश्वसनीय और सर्वमान्य होगी। वास्तव में सभी विज्ञानों में विषयों का चुनाव शोधकर्ता की रुचि के आधार पर होता है, न केवल व्यक्तिगत बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव विषयों के चुनाव पर पड़ता है। यदि कुशलता हमारी संस्कृति का एक महान मूल्य है तो हम कुशल मशीनें बनाने के लिए इन्जीनियरों के अध्ययन पर बल देते हैं। यह कहा जा सकता है कि कभी-कभी सामाजिक समस्याओं के हल के लिए सुझाव देते हुए, सामाजिक वैज्ञानिकों के मूल्य उनके विवेचन को प्रभावित कर देते हैं। यह समस्या किसी हद तक वास्तविक है परन्तु यह मूल्यों और तथ्यों में विवेक न करने के कारण पैदा होती है और दूसरे सामाजिक वैज्ञानिक ऐसी भ्राँति को ढूँढ़ निकाल सकते हैं।

सिद्धान्तः मूल्यों और तथ्यों का भेद स्पष्ट है। मूल्य उसे कहते हैं जो वांछित हो और तथ्य उसे जो अस्तित्ववान हो। सिद्धान्तः मूल्यों और तथ्यों में विभेद किया जाना चाहिए, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करना सदा सम्भव नहीं होता। सामाजिक वैज्ञानिकों का अपने कार्य में मूल्यों के प्रति क्या दृष्टिकोण होना चाहिए, इस पर मतभेद पाया जाता है। प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या सामाजिक वैज्ञानिक अपने अनुसन्धान शिक्षण और परामर्श को मूल्यों से प्रभावित होने दें अथवा न होने दें। इस विषय में एक मत **मैक्स वेबर** का है कि सामाजिक वैज्ञानिकों को अपने कार्य में किसी प्रकार के मूल्यों से प्रभावित नहीं होना चाहिए। दूसरा मत **डाहर्नडार्फ** का है कि सामाजिक वैज्ञानिकों के रूप में हमारा उत्तरदायित्व वैज्ञानिक अनुसन्धान के साथ समाप्त नहीं होता, बल्कि यहीं से आरम्भ हो सकता है। हमें लगातार अपने विध्या सम्बन्धी कार्य के राजनीतिक और नैतिक परिणामों की बराबर परीक्षा करती रहनी चाहिए।

(8) सामाजिक घटनाओं की गतिशील प्रकृति (Dynamic Nature of Social Phenomena)– सामाजिक घटनाओं की एक और विशेषता या कमी यह है कि इनमें बहुत अधिक परिवर्तनशीलता दिखाई देती है। सामाजिक घटनाओं की इस अस्थिरता के कारण इनके विषय में कोई निश्चित निरीक्षण-परीक्षण करना अथवा निष्कर्ष निकालना कठिन होता है। आज जिस समूह के बारे में अध्ययन किया गया वह समूह अपनी उन्हीं विशेषताओं के साथ कुछ दिन बाद भी वैसा बना रहेगा इसकी कोई निश्चितता नहीं होती। इतना नहीं, कोई आकस्मिक घटना व्यक्ति और समाज दोनों की ही जीवन-व्यवस्था को रातोंरात बिल्कुल पलट सकती है। परन्तु परिवर्तनशीलता का मतलब कदापि यह नहीं है कि सामाजिक घटनाएँ अव्यवस्थित, आकस्मिक और अनियमित रूप में घटित होती रहती हैं। सभ्य समाजों की बात तो दूर रही, जंगली समाज में भी इस प्रकार की स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। थोड़ा सा सतर्क निरीक्षण करने पर यह स्पष्टतः पता चलता है कि परिवर्तनशीलता के बीच भी सामाजिक घटनाओं में निश्चितता, क्रमबद्धता और नियमितता होती हैं जिसके कारण इनका भी वैज्ञानिक अध्ययन उसी रूप में सम्भव है जिस रूप में प्राकृतिक या भौतिक घटनाओं का।

3. तथ्यों के विश्लेषण की प्रक्रिया का वर्णन करें। (Discuss the process of Data Analysis.)

उत्तर–विश्लेषण कार्य की सफलता शोधक की क्षमता, व्यक्तित्व तथा आन्तरिक विशेषताओं पर आधारित होती है। जो शोधकर्ता के ज्ञान, अनुभव, साहस, ईमानदारी तथा अभिव्यक्ति पर निर्भर होती है। उसमें एक आलोचनात्मक कल्पना शक्ति होनी चाहिए ताकि वह तथ्यों के मध्य अंतर्संबंधों को समझ सके। विश्लेषण को वैधानिक और वस्तुपरक बनाने के लिए यह जरूरी है कि अनुसन्धानकर्ता पूर्वाग्रहों, मिथ्या, झुकावों और पक्षपातों से दूर रहे। यदि ऐसा न हो तो अनुसन्धानकर्ता का पूरा विश्लेषण निरर्थक और भ्रमपूर्ण हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि विशेष विचारधारा या मूल्य-व्यवस्था से प्रतिबद्ध व्यक्ति निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण नहीं कर सकता।

तथ्य विश्लेषण की जरूरी कार्य-प्रणाली यह है कि सबसे पहले तथ्यों को सही तरीके से सम्पादन किया जाये। सम्पादन में त्रुटियों को दूर किया जाता है। इसमें तीन बातों की ओर ध्यान दिया जाता है–

1. सभी निर्धारित स्रोतों से तथ्य सामग्री प्राप्त करके उसे क्रमानुसार जमा दिया जाए।
2. प्राप्त उत्तरों की जाँच करके अशुद्धियों को दूर किया जाता है।
3. भ्रान्ति पैदा न हो, इसके लिए अनावश्यक सामग्री को अलग कर दिया जाता है।

दूसरे चरण में, द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की जाँच की जाती है। उनमें यह देखा जाता है कि वे विश्वसनीय, उपयुक्त और पर्याप्त हैं कि नहीं। तीसरे चरण में तथ्यों के वर्गीकरण और चौथे चरण में संकेतन की जाँच की जाती है। संख्यात्मक विश्लेषण करने के लिए उत्तरों को संकेत प्रदान किये जाते हैं। अंतिम चरण में तथ्यों के सारणीयन को देखा जाता है कि वह ठीक तरह से किया गया है अथवा नहीं।

विश्लेषण की प्रारम्भिक कार्य-विधि में अब तक किये गये शोध संबंधों की ठीक तरह से जाँच की जाती है। विश्लेषण के अगले कदम में व्याख्या या निर्वचन होता है।

विश्लेषण एवं व्याख्या की प्रक्रिया (Process of Analysis and Explanation)–यंग ने विश्लेषण और व्याख्या की प्रक्रिया को निम्नलिखित सोपानों द्वारा समझाया है–

1. तथ्यों की तोल (Weighing the Data)–इसका तात्पर्य तथ्यों की पुनर्परीक्षा से है। चूँकि शोध-विश्लेषण का उद्देश्य संकलित तथ्यों को वास्तविक रूप में अर्थयुक्त बनाकर निष्कर्ष के लिए उन्हें उपयोगी बनाना है, इस कारण यह आवश्यक है कि तथ्यों की पुनर्परीक्षा कर ली जाए। इसके लिए निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर ढूँढना आवश्यक होगा–

(*i*) क्या संकलित तथ्य पर्याप्त वैषयिक तथा अपनी परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि है?
(*ii*) क्या उनकी परीक्षा और पुनर्परीक्षा सम्भव है और क्या उन्हें वस्तुनिष्ठ रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है?
(*iii*) क्या व माप के योग्य है?
(*iv*) क्या क्रमबद्ध सिद्धान्त के लिए महत्त्वपूर्ण है?
(*v*) क्या उनसे सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है?

तथ्यों की दुबारा जाँच करते समय यह देखा जाता है कि तथ्य पर्याप्त रूप से वस्तुपरक तथा परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि हो, उसकी वस्तुपरक ढंग से पुनः परीक्षा हो सके, उनका मापन किया जा सके, वे वास्तव में क्रमबद्ध सिद्धान्त का विकास करने के लिए महत्त्वपूर्ण हों तथा उनसे सामान्य निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव हो। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि संकलित तथ्य महत्त्वहीन और महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। केवल महत्त्वपूर्ण तथ्यों को स्थान दिया जाना चाहिए और व्यर्थ और अर्थहीन तथ्यों को निकाल देना चाहिए।

2. एक रूपरेखा का निर्माण (Preparation of an outline)–एक रूपरेखा अध्ययन का नक्शा होती हैं। स्पष्ट तथा मितव्ययी विचारधारा के विकास तथा विविध तथ्यों के विस्तृत क्षेत्र में विषय

में सहज तथा क्रमबद्ध स्पष्टीकरण एक रूपरेखा के बिना सम्भव नहीं है। एक रूपरेखा वास्तव में तथ्यों का एक आरम्भिक वर्गीकरण ही होती है जोकि विषय से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पहचानने में हमारी मदद करती है। विस्तृत विश्लेषण और रूपरेखा प्रस्तुत करने से पहले यह आवश्यक है कि एकत्रित तथ्यों में से अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को एक बार फिर से दोहरा लिया जाए ताकि अध्ययन की गई संपूर्ण परिस्थिति के संबंध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाए, नए तथ्य प्रकाश में आ सके और पहले वाले तथ्यों की सत्यता का भी पता लग सके। रूपरेखा तैयार करने में असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। इसका निर्माण स्पष्ट मान्यताओं पर होना चाहिए। वैज्ञानिक ढंग से बनाई गई रूपरेखा अनुसन्धान के महत्त्वपूर्ण पक्षों का रहस्योद्घाटन करती है। यह इस बात का निर्धारण करती है कि तथ्यों का पारस्परिक संबंध क्या है, कहाँ पर गम्भीर गलतियाँ की गई हैं, आदि। रूपरेखा का निर्माण करने में दो प्रकार के लोगों की मदद ली जानी चाहिए–प्रथम विषय से सम्बद्ध गहरी जानकारी रखने वाले ईमानदार, स्पष्टवादी तथा निर्भीक लोग होंगे तथा दूसरे, उस विषय से अनभिज्ञ लोग होंगे। एक सही रूपरेखा को बनाने या सुधारने में योगदान करेंगे, तो दूसरे उसे समझने योग्य बनाने की दृष्टि से सहायता करेंगे।

3. व्यवस्थित वर्गीकरण (Systematic Classification)–राजनीति विज्ञान के अनुसन्धान में वर्गीकरण का अत्यधिक महत्त्व होता है क्योंकि एक घटना या परिस्थिति के अनेक कारण होते हैं जो विविध प्रकृति के होते हैं। वर्गीकरण के द्वारा ही इनके सापेक्ष प्रभाव का पता चलता है। सावधानीपूर्वक रूपरेखा के निर्माण के पश्चात् तथ्यों के वर्गीकरण करने की अवस्था आती है। वर्गीकरण के आधार पर तथ्यों में पाई जाने वाली समानता और असमानताओं का ज्ञान तुरन्त हो सकता है। समग्र एकत्रित तथ्यों के विस्तृत तथा ठोस वर्गीकरण पर ही बहुत कुछ अध्ययन की प्रभावशीलता व मूल्य निर्भर करता है। **श्री रॉबर्ट इ. चाड्डॉक ने लिखा है कि सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकरण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सामाजिक घटनाओं में एक परिस्थिति को अनेक कारक (*factors*) प्रभावित करते हैं तथा उन कारकों में अत्यधिक विविधताएँ भी होती हैं। इस विस्तृत प्रकार भेद को समझने के लिए वर्गीकरण अति आवश्यक हो जाता है। तथ्यों का वर्गीकरण हो जाने पर उनकी तुलना, उनमें पाई जाने वाली समानताओं और असमानताओं और पारस्परिक संबंधों का ज्ञान हो जाता है।**

4. अवधारणाओं का निर्माण (Formulation of concepts)–एकत्रित तथ्यों का वर्गीकरण कर लेने के पश्चात् अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक हो जाता है ताकि संपूर्ण परिस्थिति को अवधारणात्मक भाषा में व्यक्त किया जा सके। इस भाषा को विद्यमान अवधाराणाओं के आधार पर विकसित किया जा सकता है। अवधारणात्मक भाषा का प्रयोग करने से लाभ यह होता है कि एक संपूर्ण परिस्थिति या प्रक्रिया को केवल दो-एक शब्दों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है।

जब शोधकर्ता तथ्यों में अन्तः संबंध को देखता है अथवा एक निश्चित घटना या व्यवहार प्रतिमान को वह पृथक करने में सफल होता है तो वह उस सम्पूर्ण स्थिति को अति संक्षेप में एक दो शब्दों की सहायता से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है। तथ्यों के एक वर्ग की इस संक्षिप्त अभिव्यक्ति को ही विज्ञान में अवधारणा कहा जाता है। **मिचेल** के शब्दों में, **"अवधारणा एक विवरणात्मक गुण या संबंध की ओर संकेत करने वाला एक पद है।" अवधारणा वैज्ञानिक अवलोकन, चिंतन एवं यथार्थ अनुभव पर आधारित होती है तथा उसका एक अर्थ-संबंधी आधार होता है।** उसके द्वारा बनाये जाने वाला अर्थ या विशेषताएँ उससे सम्बद्ध संपूर्ण वर्ग या समूह में पायी जाती है। अवधारणा शब्दों द्वारा गुण-समूहीकरण का नाम है। अवधारणा के अंतर्गत आने वाली घटनाओं, वस्तुओं, क्रियाओं आदि को **'तथ्य'** कह दिया जाता है। वास्तव में, अवधारणा किसी घटना, गतिविधि, वस्तु या विचार को देखने या अवलोकन के नियमों को कहते हैं। वे नियम विशेष उद्देश्य को सामने रखकर बनाये जाते हैं।

अवधारणा का महत्त्व इसी से स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों के एक वर्ग या समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा होती है। अर्थात् अवधारणा के माध्यम से एक घटना या प्रक्रिया को केवल दो एक शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि विद्यार्थियों के एक वर्ग में कक्षा से भाग जाने

की प्रकृति सामान्य रूप से पाई जाती है तो इस संपूर्ण स्थिति को 'कक्षा पलायन' (*Truancy*) की अवधारणा द्वारा समझाया जा सकता है। अवधारणा के महत्त्व को समझाते हुए **गुडे** और **हाट** ने लिखा है कि **"अवधारणा को विकसित करने की प्रक्रिया इन्द्रिय जनित बोध को प्राप्त करने व उससे निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है।"** इस प्रकार तथ्यों के एक वर्ग या समूह के गुणों को समझना, उनका अध्ययन करना, उन्हें व्यवस्थित व पृथक् करना सम्भव होता है। इस प्रकार तथ्यों के एक समूह में पाए जाने वाले गुणों को एक नाम दे देने से विचार आगे बढ़ सकता है। अतः विचारों को पनपने के लिए अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक है। किन्तु अवधारणा का निर्माण वस्तुपरक ढंग से किया जाना चाहिए। उससे यथार्थ तथा सुस्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यह निश्चित अर्थ को बताने वाली, बोधगम्य, सामान्य तथा सदैव एकार्थक होनी चाहिए।

5. तुलना एवं व्याख्या (Comparison and Interpretation)–जब संकलित तथ्यों का वैज्ञानिक वर्गीकरण कर लिया जाता है और अवधारणाओं का निर्माण भी कर लिया जाता है तो तथ्यों के सामान्य प्रतिमान (*Pattern*) स्पष्ट हो जाते हैं। तब इन प्रतिमानों की तुलना करनी सम्भव होती है। तुलनात्मक विश्लेषण किसी भी वैज्ञानिक निष्कर्ष के लिए बहुत आवश्यक है। तुलना करने से विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों का केवल स्पष्टीकरण होता है बल्कि उनका तुलनात्मक महत्त्व भी हमारे लिए स्पष्ट हो जाता है। तुलना करने से न केवल विभिन्न तथ्यों का स्पष्टीकरण ही हो जाता है, बल्कि हम उनकी गहराइयों की और विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एकत्र तथ्यों का विश्लेषण करके हम जो निष्कर्ष निकालते हैं, उस क्रिया को व्याख्या कहते हैं। शोधक व्याख्या करते समय कार्य-कारण के संबंध को स्पष्ट करने की कोशिश करता है। बिना कार्य-कारण के व्याख्या का कोई औचित्य नहीं है। कार्य-कारण सहित व्याख्या करना ही विज्ञान का लक्ष्य माना जाता है। शोधक को यह ध्यान देना चाहिए कि विषय से संबंधित व्याख्या स्पष्ट और सरल हो जिससे उसका लाभ अन्य लोग भी उठा सकें। जहाँ तक हो जटिलता को दूर किया जाना चाहिए।

6. सिद्धांतों का प्रतिपादन (Formulation of Theories)–घटनाओं और तथ्यों की वैज्ञानिक-व्याख्या नए सिद्धांतों का निर्माण करती है। ये सिद्धांत संकलित तथ्यों के जटिल, अमूर्त तथा अस्पष्ट संबंधों को निश्चित करते हैं और संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त कर देते हैं। ये सिद्धांत वास्तव में व्याख्या के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों का अति संक्षिप्त रूप होते हैं। विभिन्न शोधकर्ता अपने अनुसन्धान विश्लेषण और व्याख्या के आधार पर अलग-अलग सिद्धांतों को प्रतिपादित करते रहते हैं।

सिद्धांत के प्रतिपादन का अर्थ यह है कि अनुसन्धान के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हो गई है और यह व्याख्या का अंतिम चरण है और सबसे महत्त्वपूर्ण भी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि इनके प्रतिपादन में आवश्यक सावधानी बरती जाए। सिद्धान्त को स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए। इसमें भाषा का प्रयोग सरल रूप में किया जाना चाहिए तथा सिद्धांत को प्रस्तुत करने की प्रणाली भी बड़ी सरल होनी चाहिए ताकि अन्य लोग भी इसको समझ सके। इसके विपरीत यदि इसे जटिल, अस्पष्ट और संगत रूप में प्रस्तुत किया गया तो अनुसन्धान के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति न होगी। प्रतिपादित सिद्धान्त इस प्रकार का हो कि उसके विश्लेषण से संपूर्ण अध्ययन का क्षेत्र और मूल निष्कर्ष स्पष्ट हो जाये। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सिद्धांत की वास्तविक उपयोगिता स्वतः ही कम हो जाएगी।

सामाजिक अनुसन्धानों में सिद्धांतों के प्रतिपादन में बड़ी कठिनाई आती है क्योंकि घटनाओं की प्रकृति में एकरूपता, समानता और स्थिरता नहीं है अतः इसके कारण अनुसन्धानकर्ता को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिन-जिन सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में शोध कार्य हो चुके हैं उनकी सहायता से शोध कार्य में कठिनाई नहीं आती क्योंकि पहले वाले शोध कार्य नए शोध कार्य को दिशा एवं निर्देशन प्रदान करते हैं। नए-नए अनुसन्धानों से कई छिपे हुए तथ्यों को प्रकाश में लाया जाता है और पुराने सिद्धांतों में संशोधन या परिवर्तन कर उन्हें वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप दिया जाता है।

सिद्धांत शोध की सारवस्तु होते हैं। यदि सिद्धांत को व्यापक मान्यता मिल जाती है तो वह धीरे-धीरे एक सामाजिक या राजनीतिक नियम बन जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि सिद्धांत सर्वथा नवीन ही हो। कई बार वह पुराने सिद्धांत में केवल संशोधन मात्र करता है।

एक वैज्ञानिक सिद्धांत का निर्माण करना राजनीतिक अनुसन्धान का मुख्य लक्ष्य होता है। एक अच्छे वैज्ञानिक सिद्धांत में निम्नलिखित विशेषताएँ अवश्य होनी चाहिए–

1. प्रथम उसमें आंतरिक और बाहरी निगम्यता (*Deduciblity*) होनी चाहिए।
2. दूसरे उस सिद्धांत में व्याख्या करने की शक्ति होनी चाहिए।
3. तीसरे उसमें पूर्व-कथनीयता होनी चाहिए।
4. चौथे उसका व्यापक क्षेत्र होना चाहिए।
5. पाँचवें उसमें परिशुद्धता होनी चाहिए।
6. छठे उसमें पुष्टिकरण की विशेषता होनी चाहिए।
7. सरलता सिद्धांत की सातवीं विशेषता है।
8. अंतिम विशेषता के अनुसार, सिद्धांत को उपयोगी और फलप्रद होना चाहिए।

जब ऊपर दिए गए आठ आयामों के आधार पर राजविज्ञान में उपलब्ध सिद्धांतों का मूल्यांकन किया जाता है तो शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है कि उसमें ऐसे सिद्धांत बहुत कम हैं। अब तक जो भी सिद्धांत उपलब्ध है उन्हें पूर्व-सैद्धान्तिक रचनाएँ कहा गया है। वास्तव में देखा जाए तो वैज्ञानिक सिद्धांत के अभाव में ही इन पूर्व-सैद्धान्तिक रचनाओं को 'सिद्धांत' कह दिया जाता है। ये सर्वथा निरर्थक नहीं हैं। इनसे भी 'वैज्ञानिक सिद्धांत' के विकास में सहायता मिलती है।

□□

2. साक्ष्य का अर्थ बताइए। साक्ष्य विश्लेषण के आधार तत्त्वों की विवेचना कीजिए। (Point out the meaning of Evidence. Discuss the basic factors of Evidence Transmission.)

अथवा

साक्ष्य-विश्लेषण के आधार-तत्त्वों का वर्णन कीजिए।

उत्तर–साक्ष्यों का विश्लेषण आवश्यक है। एक साक्ष्य की प्रामाणिकता को जानने के लिए कई साक्ष्यों का विश्लेषण भी आवश्यक है। यह साक्ष्य-विश्लेषण कुछ विशेष आधारों पर किया जाता है, जिनका उल्लेख आगे किया गया है–

1. अन्य साक्ष्यों की आवश्यकता (Requirement of other Evidences)–एक साक्ष्य की सत्यता की जानकारी हेतु कई साक्ष्यों के विश्लेषण की आवश्यकता होती है। अतएव कई साक्ष्यों को ढूँढ़ना आवश्यक होता है। सम्बद्ध एवं आवश्यक साक्ष्य बड़ी कठिनता से मिलते हैं। उनकी प्राप्ति के लिए किए जाने वाले प्रयास को कुछ लोग 'दुर्गम छलांग' की संज्ञा देते हैं। ऐसा इसलिए कि एक साक्ष्य की पुष्टि में जब एक और साक्ष्य मिल जाता है तो भी स्थिर नहीं रहा जाता, अपितु कई और साक्ष्यों को संगृहीत करने के लिए कठिन श्रम करने को तैयार रहा जाता है। दोनों ही प्रत्यक्ष साक्ष्य होने से सत्य माने जा सकते हैं, किन्तु जब उनका विश्लेषण करके देखा गया तो वे अन्य साक्ष्यों के साथ विश्लेषित किए जाने पर गलत मिलते हैं।

2. घटना का ज्ञान (Knowledge of Event)–घटना का ज्ञान सम्यक् एवं सम्पूर्ण रूप से होना चाहिए अन्यथा न तो अन्य सहायक साक्ष्य ढूँढ़े जा सकेंगे और न ही ठीक से उनका मूल्यांकन हो सकेगा। घटना का यदि ज्ञान हो जाए तो भी कथन-पक्ष में निश्चयात्मकता न होकर सम्भाविता ही अभिव्यक्त होनी चाहिए। अतीतकालिक घटना को काल्पनिक नहीं, अपितु यथार्थ लिखना चाहिए, भले ही वह सम्भावित कहकर लिखी जाए। घटना की जानकारी चाहे जैसे भी हो की जानी चाहिए।

3. स्मृति-साक्ष्य (Memory Evidence)–स्मृति भी साक्ष्य-विश्लेषण में सहायक हो सकती है। परन्तु, वह अप्रत्यक्ष होने से साक्ष्य नहीं कही जा सकती; और जो साक्ष्य नहीं है वह इतिहास कैसे हो सकती है। उदाहरणार्थ–यदि कोई किसी को पत्र लिखता है, और उसकी स्मृति उसमें बनी होती है तो वह स्मृति केवल स्मृति होगी, प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं होगी। परन्तु जब वह व्यक्ति उस पत्र का उत्तर प्रस्तुत करते हुए उस उत्तर (पत्रोत्तर) को प्रत्यक्षरूप में प्रस्तुत करता है तो वह पत्रोत्तर उस समय साक्ष्य माना जाएगा। इसका प्रयोग जब वह इतिहास में करेगा तो अपने द्वारा पूर्व प्रेषित पत्र की स्मृति को भी ध्यान में रखेगा। साक्ष्य-विश्लेषण में यह अप्रत्यक्ष साक्ष्य अथवा स्मृति-साक्ष्य कहा जाएगा।

4. प्रमाण-स्वीकृति (Acceptance of Proof)–प्रमाण भी साक्ष्य का ही पर्याय है। परन्तु इसको यहाँ विशेष आशय से उद्धृत किया गया है। यहाँ यह 'प्रमाण' शब्द साक्ष्य के पर्याय रूप में प्रस्तुत नहीं है, अपितु जो साक्ष्य पूर्णरूप से सत्य प्रमाणित हो जाते हैं और किसी भी तरह असत्य सिद्ध नहीं होते, उनको ही प्रमाण की श्रेणी में रखते हैं। यहाँ प्रमाण को प्रमाणित के आशय में संदर्भित किया गया है। प्रमाण-स्वीकृति का मन्तव्य यहाँ इसी प्रमाणित प्रमाण अथवा प्रमाणित (पुष्ट) साक्ष्य से है। साक्ष्यों को विविध साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित करते हैं, अतएव साक्ष्य-विश्लेषण में प्रमाण-स्वीकृति आवश्यक एवं अपरिहार्य है।

5. कैंची तथा गोंद पद्धति (Scissors and gum method)–यह प्राचीन पद्धति वर्तमान वैज्ञानिक इतिहास अथवा इतिहास-विज्ञान में हास्यास्पद (अवैज्ञानिक) मानी जाती है। इनमें घटना अथवा तथ्यों को संकलित करते हैं और कैंची-गोंद पद्धति से काँट-छाँटकर क्रमबद्ध करके रचना की जाती है। परन्तु आज, साक्ष्य अथवा तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या करनी चाहिए, न कि कैंची-गोंद-पद्धति का उपयोग, जो वर्तमान समय में भी किया जाता है।

6. अनुमान (Estimation)–अनुमान आवश्यक नहीं है कि सत्य हो। इतिहास सत्य की प्रामाणिकता को मान्यता देता है, अनुमान को नहीं। परन्तु, इतिहास विज्ञान की तरह निश्चयात्मक नहीं, अपितु सम्भावनात्मक होता है; इसलिए जहाँ सम्भावना की बात आती है, वहाँ अनुमान की उपेक्षा नहीं कर सकते। अनुमान साक्ष्य नहीं है, परन्तु इतिहास में साक्ष्यों के आधार पर अनुभवात्मक अथवा सम्भावनात्मक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इसी आधार पर कॉलिंगवुड (*Kallingwood*) ने इतिहासकार के साक्ष्यों के प्रस्तुतीकरण को ऐतिहासिक अनुमान की संज्ञा दी है।

7. कबूतरी-सुराख पद्धति (Pigeon hole method)–कैंची-गोंद-पद्धति से असन्तुष्ट विको, कांट, हर्डर, हीगल, मार्क्स, स्पेंगलर, ट्वायनबी आदि ने 'कबूतरी-सुराख' अथवा कपोती कोटर-पद्धति द्वारा स्रोतों के अन्तस्तल में प्रवेश करके साक्ष्यों का विश्लेषण करते हुए ऐतिहासिक निष्कर्ष प्रस्तुत किए और इस तरह वे इतिहास को विज्ञान के समकक्ष लाए थे। इस पद्धति का नामकरण कॉलिंगवुड ने किया था।

8. प्रश्न (Question)–बेकन ने जब यह कहा कि वैज्ञानिक लोग प्रकृति से प्रश्न करते हैं तथा अन्वेषण द्वारा उसका उत्तर प्रस्तुत करते हैं, तो इतिहासकारों ने भी कुछ मूलभूत प्रश्नों के साथ अतीत का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कुछ सामाजिक प्रश्न किए और उनका उत्तर उन्होंने अतीत से प्राप्त कर अपने समाज के सम्मुख प्रस्तुत किए। साक्ष्यों के बारे में ये ही प्रश्न मुखरित हुए। प्रश्न होने से मानसिक प्रक्रिया जाग्रत हुई। इससे ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई। यही इतिहास बना जिसके निष्कर्ष उन प्रश्नों के उत्तर हुए जो प्रारम्भ में साक्ष्यों के सन्दर्भ में किए गए थे। इस साक्ष्य-विश्लेषण पद्धति में प्रश्न का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए, तभी उत्तर एवं निष्कर्ष भी स्पष्ट प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रश्न-प्रक्रिया को मूलभूत प्रश्नोत्तर अथवा पूर्वाग्रह या परिकल्पना भी कह सकते हैं।

प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में एक बात यह भी समझ लेनी चाहिए कि कैंची तथा गोंद-शैली के इतिहासकार के समक्ष दो तरह के साक्ष्य होते हैं–

(1) शक्तिशाली साक्ष्य तथा

(2) वास्तविक साक्ष्य।

इनमें प्रथम प्रकार के साक्ष्य अपने आप में पूर्ण एवं घटना के पूर्ण विवरण से संयुक्त होते हैं; जबकि वास्तविक साक्ष्य सम्पूर्ण साक्ष्य का एक अंश होता है, जिसे इतिहासकार स्वीकार करता है। इसे स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण यह दिया जा सकता है–अकबर द्वारा असीरगढ़ पर विजय एक शक्तिशाली साक्ष्य है, जबकि विजय का कारण रिश्वतखोरी अथवा महामारी एक वास्तविक साक्ष्य है। आज, वैज्ञानिक इतिहास में शक्तिशाली साक्ष्यों का लोप होता जा रहा है। पद-पद पर प्रश्न ही पूछे जा सकते हैं। इतिहासकार प्रश्न

इसलिए पूछता है क्योंकि वह जानता है कि उत्तर देने के लिए उसके मस्तिष्क में साक्ष्य रहता है। **एम. प्वायण्ट** ने प्रश्नों के अभाव में साक्ष्यों का संकलन कठिन बताया है। **एक्टन** ने काल की अपेक्षा समस्या के अध्ययन को महत्त्व दिया है और **कॉलिंगवुड** ने प्रश्नोत्तर में सहायकों को साक्ष्य कहा है।

9. कथन (Statement)–यह कैंची-गोंद-शैली पर आधृत रहने वालों के अनुकूल है जो कथन को यथावत् स्वीकार कर लेते हैं। साक्ष्य-प्रस्तुति एवं विश्लेषण में वैज्ञानिक इतिहासकार इस कथन-शैली को स्वीकार करते हैं। वे कथन के प्रति अनेक संदेहास्पद प्रश्न करते हैं कि कथन क्या है? वह किन परिस्थितियों में कहा गया है? इत्यादि। फिर साक्ष्यों के प्रसंग में 'कथन' का महत्त्व है क्योंकि कभी-कभी ऐसी स्थिति आती है जब कोई बात स्पष्ट नहीं लिखी जा सकती है और उसे रहस्यमय ढंग से 'कथन' के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है। उदाहरणार्थ–असीरगढ़ किले के पूर्ववर्णित प्रसंग में स्पष्ट रूप से **अबुलफजल** यह नहीं लिख सके कि रिश्वत देकर दुर्ग जीता गया था, अतः यह लिखा कि 'महामारी' के कारण दुर्ग जीता गया। एक-दूसरे उदाहरण को देखें–ग्यासुद्दीन तुगलक की आकस्मिक मौत राजकुमार उलुग खाँ के सुनियोजित षड्यन्त्र से हुई थी, परन्तु इसे स्पष्ट न लिखकर **जियाउद्दीन बर्नी** ने यह लिखा–'अल्लाह सत्य को जानता है। परन्तु ऐसे कथन को और लोग भले ही स्वीकार कर लें, एक वैज्ञानिक इतिहासकार और इतिहास-गवेषक इसे यथावत् स्वीकार नहीं कर सकता, अपितु अन्य साक्ष्यों के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में अपना यथार्थ कथन प्रस्तुत करता है। आधुनिक इतिहासकार अथवा शोधकर्ता केवल उसी कथन को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है जो उसके विचारों की पुष्टि कर सके। □

अथवा

इतिहास के स्रोत क्या हैं? ऐतिहासिक स्रोतों की व्याख्या कीजिए।
(What are the sources of history? Analyse the historical sources.)

अथवा

इतिहासकार को किन स्रोतों को आधार मानकर इतिहास लेखन करना चाहिए?
(Enumerate the sources of history, on which a historian should bases his work of history-writing?)

उत्तर–इतिहास चाहे वर्तमान से जुड़े हुए अतीत का हो या भूतकाल से जुड़े हुए अतीत का उसका यथातथ्य ज्ञान उन स्रोतों से ही हो सकता है, जो संदर्भित काल से सम्बन्धित हों। अतीत का समग्र इतिहास लगभग ऐसे स्रोतों पर आधारित है, जिनके विषय में प्राप्त सामग्री स्वयं बोलती तो है लेकिन अध्येता को उसकी भाषा, उसी रूप में समझना बड़ा दुरूह होता है, जिस रूप में वह बोलती है। इस कठिनाई को प्रायः अध्येता उपलब्ध सामग्री को स्वयं अपने अनुमान और कल्पनाओं के आधार पर बुलवाते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ इतिहासकारों का कहना है कि ऐसी सामग्री खुद नहीं बोलती, उसे इतिहासकार बुलवाता है, जबकि दूसरों का मत है कि यह सामग्री स्वयं बोलती है। बात दोनों ही सत्य हैं। एक इंस रूप में कि इतिहासकार जब ऐसी सामग्री की वाणी नहीं समझता तो वह उसे अपनी कल्पना की वाणी प्रदान करता है, जिसे पाकर वह बोलने लगती है, अर्थात् तब वह इतिहासकार से प्राप्त की हुई वाणी में बोलती है, परन्तु दूसरी ओर

जब इतिहासकार किसी पुरातन सामग्री को उसके काल, परिस्थितियों, सांस्कृतिक परिवेश, राजनीतिक और सामाजिक वातावरण आदि के साथ संतुलित रूप में जोड़ने में सफल हो जाता है तो वह सामग्री स्वयं बोलने लगती है। उसकी बोली उसके अपने काल विशेष की सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, औद्योगिक और राजनीतिक भाषा होती है। जो न संस्कृत होती है, न अरबी, फारसी या लैटिन, या फ्रेंच, स्पेनी, जर्मन या अंग्रेजी। प्रायः होता यह है कि शोधकर्ता ऐसी सामग्री को वर्तमान में संदर्भित काल के संबंध में प्रचलित की गई या हो गई धारणाओं के वस्त्र पहनाकर उसे देखता है और वर्तमान की भाषा प्रदान करता है, जो इतिहास के शोधकार्य में सबसे बड़ा रोड़ा है।

इतिहास लेखन में स्रोत इतिहासकार के लिए कच्चे माल की तरह होते हैं, क्योंकि उन्हीं से इतिहास की रूपरेखा का निर्माण होता है। इतिहास के स्रोत केवल ग्रन्थ ही नहीं होते बल्कि पुरातत्व (*archeology*), पुरालेख (*epigraphy*) एवं मुद्रा शास्त्र (*numismatics*) भी ऐतिहासिक तथ्यों की विशेष जानकारी देने वाले विश्वसनीय स्रोत हैं। प्राचीन साहित्य तथा विदेशी यात्रियों के विवरण भी विचारणीय स्रोत होते हैं।

ऐतिहासिक स्रोतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(अ) प्रधान स्रोत (*Primary sources*) (ब) गौण स्रोत (*Secondary sources*)

प्रधान स्रोत (*Primary sources*)

प्रधान स्रोतों में वह स्रोत सम्मिलित है, जिनसे तथ्यों की सीधी जानकारी प्राप्त होती है, जैसे ऐसे ग्रन्थ, जिनका लेखक घटनाओं से सीधे रूप से सम्बन्धित रहा हो, या घटना काल का पर्यवेक्षक रहा हो, उस समय के ऐतिहासिक पात्रों के बीच उसका व्यावहारिक क्षेत्र रहा हो। **घटना काल के अभिलेख भी इतिहास** के प्रधान स्रोतों की गिनती में आते हैं।

प्रधान स्रोतों के भेद (Kinds of Primary Sources)—प्रधान स्रोत के रूप में हस्तलिखित पाण्डुलिपि का सर्वाधिक महत्त्व होता है। हस्तलिखित दस्तावेज भी प्रधान स्रोत होते हैं। कुछ इतिहासकार पाण्डुलिपि से मुद्रित प्रतियों को प्रधान स्रोत मानते हैं, कुछ उन्हें गौण स्रोतों की संज्ञा देते हैं, लेकिन **प्रो० मार्विक**, ऐसी मुद्रित सामग्री को प्रधान स्रोत ही मानते हैं। वह उन्हें प्रधान स्रोतों से अधिक विश्वसनीय प्रतीत होते हैं।

वस्तुतः प्रधान तथा गौण स्रोतों के बीच भेद की दीवार नहीं खड़ी की जा सकती। प्रायः आत्मकथा प्रधान स्रोत के रूप में ही मानी जाती है, लेकिन कभी-कभी इसे गौण स्रोत भी माना जाता है, क्योंकि इसमें कुछ ऐसी घटनाओं का विवरण भी होता है, जो आत्म-कथ्य लेखन से पहले कभी घटित हुई होती हैं। इन घटनाओं के उल्लेख गौण स्रोतों के आधार पर किए जाते हैं। प्रायः जो स्रोत प्रधान माने जाते हैं वह निम्न हैं–

(1) समकालीन अभिलेख (Contemporary Records)–प्रो० गोरचाक ने कहा है कि समकालीन अभिलेख एक दस्तावेज है जिसमें सम्बन्धित व्यक्ति को अपने कार्य सम्पादन के लिए कुछ अनुदेश दिए जाते हैं। इसमें अनुदेश, दस्तावेज, नियुक्ति सूचनाएं, आदेश आदि आते हैं। ऐसे अभिलेखों में छल-प्रपंच की रूभावना कम ही रहती है; इसलिए ऐसे अभिलेखों को भी इतिहासकार को अन्य साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित कर लेने की सलाह दी जाती है। **आशुलेखन** (*Stenographic*) तथा **ध्वनिलेख** (*Phonographic*) रिकॉर्ड भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। प्रख्यात या अप्रख्यात व्यक्तियों द्वारा अपने उपयोग में लाई जाने वाली डायरियाँ, नोटबुक, स्मरण-पत्र, उनके पत्र आदि भी इतिहास के लिए उपयोगी होते हैं।

(2) गोपनीय प्रतिवेदन (Confidential Records)–हालांकि यह प्रतिवेदन प्रधान साक्ष्य ही होते हैं, लेकिन यह समकालीन दस्तावेजों से कम विश्वसनीय माने जाते हैं। प्रायः यह घटना के बाद लिखे जाते हैं। सैनिक और राजनयिक संवाद इसी प्रकार के होते हैं।

(3) सार्वजनिक प्रतिवेदन (Public Records)–सार्वजनिक प्रतिवेदन आम जनता के लिए होते हैं। नीतिगत कारणों से उनका प्रयोग किसी विशेष प्रभाव या उद्देश्य प्राप्ति के लिए हो सकता है, इसलिए इनकी तथ्यानुकूल विश्वसनीयता परीक्षोन्मुखी होती है। सार्वजनिक प्रतिवेदन प्रायः तीन प्रकार के होते हैं–

(i) समाचार-पत्र तथा विज्ञप्ति–यह महत्त्वपूर्ण विश्वसनीय स्रोत है।

(ii) संस्मरण (Memories) तथा आत्म-कथाएँ (Autobiographies)–इन्हें अधिक विश्वसनीय नहीं माना जाता। उदाहरणस्वरूप **विन्स्टन चर्चिल** ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अपने संस्मरण प्रकाशित कराए थे, जिनमें अमेरिकी, बेल्जियन और फ्रांसीसियों द्वारा उन पर आरोप लगाया गया था कि उनके साथ चर्चिल ने न्याय नहीं किया है। परन्तु यह बात केवल दृष्टिकोण भेद की भी हो सकती है। प्रायः संस्मरण तथा आत्मकथाएँ, लेखक अपने दृष्टिकोण से लिखता है। अनेक घटनाएं ऐसी होती हैं, जिनके दृष्टिकोण भेद से लेखक के मन की बात तो स्पष्ट होती है, लेकिन जिसके बारे में लिखा जा रहा होता है, उसका दृष्टिकोण या भावना या धारणा सम्बन्धित प्रसंग में क्या थी, इस दृष्टिकोण से इस सामग्री को महत्त्वपूर्ण ही कहा जाना चाहिए।

(iii) सरकार या किसी महत्त्वपूर्ण घराने का सरकारी या अधिकृत इतिहास–यह भी एक सार्वजनिक प्रतिवेदन की तरह होता है। इनका अध्ययन इस आधार पर करना चाहिए कि यह किसी नीतिगत उद्देश्य से लिखा गया होगा।

(4) प्रश्नावली (The questionnaire)–यह एक नूतन प्रणाली है, जिसमें सार्वजनिक रूप से लोगों से किसी विशेष घटना या परिस्थिति के बारे में लोगों की राय जानने के लिए प्रश्न किए जाते हैं। प्रश्नावली का प्रयोग विश्वसनीय सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किसी विशेष व्यक्ति से भी सम्बन्ध स्थापित करता है और उससे गोपनीय रूप से पूछताछ करता है। प्रायः यह कार्य गोपनीय रूप में प्रश्नकर्ता तथा उत्तरदाता के बीच व्यक्तिगत सम्बन्धों पर आधारित होता है।

(5) सरकारी दस्तावेज (Government Documents)–अनेक सरकारी दसतावेज इतिहासकार के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं।

(6) जनमत (Public Opinion)–जनमत की अभिव्यक्ति संपादकीय लेखों, विशिष्ट लेखों, पुस्तिकाओं, सम्पादक के नाम पत्रों आदि में होती है। इतिहासकार को यह भी उपयोगी जानकारी प्राप्त कराते हैं।

(7) साहित्य (Literature)–एक प्रकार से देखा जाए तो तत्कालीन साहित्य इतिहासकार के लिए बड़े काम की चीज होती है। साहित्य एक प्रकार से समाज और संस्कृति का दर्पण होता है। साहित्य भले ही काल्पनिक रूप में होता है लेकिन उसकी कल्पनाएँ समकालीन संस्कृति और घटनाओं में निहित होती हैं।

(8) लोक साहित्य, लोकगीत आदि (Folklores etc.)–प्रायः लोक साहित्य का आधार लोक जीवन को प्रभावित करने वाले वीरों की गाथाएं होती हैं। जैसे भारत में आल्हा-ऊदल और स्विस युद्ध के नायक विलियम टेल के लोकगीत प्रसिद्ध हैं। लोक साहित्य का आंचलिक महत्त्व भी होता है और व्यापक महत्त्व भी। यूनान में होमर और ओडेसी जैसे महाकाव्यों की गणना लोक साहित्य का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें यूनान का प्राचीन इतिहास छिपा हुआ है। भारत में भी रामायण और महाभारत अमर लोक साहित्य हैं।

गौण स्रोत (*Secondary sources*)

गौण स्रोत वे हैं जो प्रधान स्रोतों पर आधारित होते हैं। उदाहरणस्वरूप किसी अधिकारी द्वारा लिखी गई विज्ञप्ति प्रधान स्रोत हो सकती है, लेकिन उसमें दिए गए ब्यौरे गौण स्रोत कहे जाएंगे क्योंकि वह उस अधिकारी ने स्वयं तैयार नहीं किए होंगे, वह उसने अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा एकत्र तथा तैयार कराए होंगे। इसी प्रकार किसी तथ्य का प्रधान स्रोत कोई समाचार-पत्र हो सकता है, क्योंकि जिन घटनाओं का उल्लेख समाचार-पत्र में होता है, उन्हें सत्य माना जाता है लेकिन उनका साक्षी स्वयं उनका विवरण प्रस्तुत करने वाला नहीं होता। वह उनका विवरण प्रत्यक्षदर्शियों से प्राप्त करता है। अतः उनमें दूसरों का सहारा लेना होता है, अतः ऐसे विवरण को प्रधान स्रोतों से उद्भूत गौण स्रोत कहा जाता है। समाचार-पत्रों की खबरें या तो संवाददाताओं द्वारा भेजी जाती हैं, या सरकारी स्रोतों पर आधारित होती हैं।

गौण स्रोत इतिहासकार को निम्न रूप में सहायक होते हैं–

(1) गौण वृत्तान्तों के सुधार में,
(2) ग्रन्थ संदर्भों के संकेत प्राप्त करने में,
(3) उद्धरणों को ग्रहण करने में, तथा
(4) व्याख्या करने में।

स्रोतों की प्रामाणिकता व विश्वसनीयता *(Authenticity and Creditability of Sources)*

गवेषणात्मक क्रिया-प्रक्रिया और पद्धति में जब गवेषक अपने विषय की सर्वाधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए स्रोतों की समस्या हल कर लेता है तथा उनमें से अपनी उपयोगी सामग्री प्राप्त कर लेता है, तो या तो यह कहिए कि प्राप्त सामग्री की सत्यता समझने की ही नहीं, उसे सत्य प्रमाणित करने की समस्या सामने आती है। यदि प्राप्त सामग्री की सत्यता संदिग्ध है तो हम उसको प्रामाणिक स्वीकार करके उसका उपयोग नहीं कर सकते। अतः उपलब्ध सामग्री की सत्यता पर विचार करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है। इस स्तर पर पहुँचकर ही गवेषणा कार्य समस्या प्रधान हो जाता है। स्रोतों तक पहुँचने या उन्हें उपलब्ध करने की समस्या भी हालांकि कठिन हो है, लेकिन स्रोतों से प्राप्त सामग्री की सत्यता को परखना तथा उसको प्रामाणिक तरह से व्याख्यायित करना उससे अधिक बड़ी समस्या हो जाती है। इतिहासकार का यह सबसे बड़ा दायित्व है कि वह पहले विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों की सत्य प्रामाणिकता की जाँच करे, तत्पश्चात् ही उनसे सामग्री ग्रहण करे या ऐसे स्रोतों से जो संदिग्ध होने पर भी ऐसी सामग्री से युक्त हों, जिसे दूसरे प्रामाणिक स्रोतों की सामग्री के साथ तुलना करके गौण सामग्री के रूप में प्रयोग किया जा सकता हो, उसकी सत्यता को मान्य किया जाने योग्य समझा जा सकता हो, पूरी तरह उसकी सत्यता के प्रति आश्वस्त हो जाए। प्रायः इतिहासकारों को ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर निष्कर्ष निकालना होता है या उनका ऐतिहासिक सामान्यीकरण करना होता है, ऐसी दशा में उसके द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला सामान्यीकरण गलत नहीं होना चाहिए।

इस दिशा में अनेक सम्भावनाएं होती हैं, जैसे किसी लेखक ने लापरवाही में झूठ लिख डाला हो या उसमें अपने पूर्वाग्रहों का रंग चढ़ाया हो, या झूठ लिखने का और कोई कारण या उद्देश्य रहा हो। ऐसा भी प्रायः होता है कि मूल लेखक अपने लेखन में निराधार अफवाहों या लोक विश्रुति का भी प्रयोग करते हैं, जो तथ्यों की सत्यता से कम, बल्कि उसकी व्याख्या से जो लोक चलन में घटना के रूप या उसके होने की संभावित अवस्थाओं तथा परिस्थितियों की कल्पना से अनायास ही होने लगती है, सम्बन्ध रखती है। अतः इतिहासकार को भी घटना के परिप्रेक्ष्य में पहुँचकर उसकी आलोचनात्मक विवेक से सत्यता तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिए। इतिहासकार को किसी अंतीत की घटना के परिप्रेक्ष्य में पहुँचने के लिए काल्पनिक सामन्जस्य स्थापित करना होता है, ऐसा करते समय उसे यह भी सावधानी बरतने की जरूरत होनी चाहिए कि घटना काल में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रहन-सहन, रीति व्यवहार तथा जीवन निर्वाह के साधनों का आर्थिक समुच्चय, परम्पराओं के प्रति सामाजिक आस्था, आदि बातें किस रूप में रही होंगी तथा उनका प्रभाव संबंधित घटना या घटनाक्रम पर किस तरह का पड़ा होना सम्भव था। आधुनिक इतिहासकार प्रायः इस परिप्रेक्ष्यात्मक स्थिति में पहुँचे बिना ही समसामयिकता का वास्ता देकर प्राचीन परम्पराओं, मान्यताओं तथा रहन-सहन की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति के प्रति अपनी पूर्वाग्रही अवधारणा को पुष्ट करते हुए इतिहास की नई व्याख्या करने लगे हैं। यह इस बात का सबूत है कि वह घटना को घटना के रूप में इस तरह देखते हैं, जैसे कि वह वर्तमान चिन्तन की विचारधारा या सांस्कृतिक जीवन से अनुप्राणित होकर ही घटी हो। प्रायः वह सम्बन्धित काल क्रम के सामाजिक तथा आर्थिक व्यवहार को सत्य रूप में जानने की चेष्टा ही नहीं करते।

आलोचना के प्रकार *(Kinds of Criticism)*

इतिहासकार द्वारा ऐसे स्रोतों या स्रोत सामग्री की सत्यता की जाँच क्रिया का आलोचनात्मक स्वरूप बाह्य या आन्तरिक हो सकता है।

बाह्य आलोचना (External Criticism)–प्रो० हॉकेट (*Hocket*) ने बाह्य आलोचना (*External Criticism*) को निम्न कोटि का बताया है। इसमें पांडुलिपियों, पुस्तकों, पुस्तिकाओं, मानचित्रों, प्राचीन अभिलेखों, स्मारकों आदि पर विचार करना सम्मिलित है। इसमें इनके उद्गम स्थल, उनके मौलिक रूप या लेखन पर गहन विचार किया जाता है। प्रो० लैंगलोई (*Langlois*) और साइनोबो (*Signobos*) का कथन है कि बाह्य आलोचना का अर्थ लेखन स्वरूप और स्रोत की प्रारम्भिक खोज है। इस प्रक्रिया में जो दस्तावेज और विवरण इतिहासकार के सामने आते हैं, वह शुद्ध या अशुद्ध सामग्रियों से भरे होते हैं। प्राचीन स्मारकों के सम्बन्ध में इतिहासकार की कल्पनाएँ काफी जागरूक रहती हैं। अतः इतिहासकार का यह कर्तव्य है कि वह अशुद्धियों को निकाल बाहर करे तथा अपनी कल्पनाओं को प्रभावी न होने दें। प्रो० लैंगलोई तथा साइनोबो की यह अनुभवपरक मान्यता है कि **"प्रायः आलोचना नहीं की जाती है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रकृति है कि वह अभिकथनों को मान लेता है।"**

जबकि आँख बन्द करके ऐसा करना अन्वेषण क्रिया में उचित नहीं होता।

दस्तावेजों की जालसाजी (Forgery of Documents)–दस्तावेजों की जालसाजी कोई नई बात नहीं है। प्रायः अपने दावों को पुष्ट करने के लिए झूठे दस्तावेज तैयार कराने या करने की प्रकृति शुरू से रही है। मध्य युग के यूरोप में जब मठों का जाल बिछ गया था तो अनेक मठाधीशों ने राजाओं से भूमि प्राप्त करने के लिए जाली दस्तावेज तैयार कराए थे।

जाली दस्तावेज तैयार कराने का एक कारण यह भी रहा है कि दुर्लभ दस्तावेजों का मूल्य बहुत बढ़ जाता है। फ्रांस की रानी **मेरी एण्टोयनेट (Marie Antoinette)** के अनेक जाली पत्र तैयार किए गए, जिन्हें ऊँची कीमत पर बेचा गया। नकली दस्तावेज तैयार करने का यह कारण कभी राजनीतिक भी होता है, तो कभी कूटनीतिक भी। इस तरह के कार्य के उद्देश्य राजनीतिक परिस्थितियों को मोड़ देने के लिए समकालीनों को भ्रमित करने के लिए तैयार किए जाते हैं या फिर उनको तैयार करने का उद्देश्य परवर्ती इतिहासकारों को धोखा देना होता है। ऐसे भी दस्तावेज होते हैं जो गुमनाम लेखकों द्वारा लिखे जाते हैं।

निस्सन्देह इन दस्तावेजों को पूर्णतः विश्वसनीय नहीं माना जा सकता, लेकिन ऐसा भी नहीं है कि इनमें बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री के प्राप्त होने की संभावना ही नहीं हो। इस दृष्टिकोण से हर दस्तावेज का परीक्षण भी सतर्कतापूर्वक करना उपयुक्त होता है।

सत्यता की संपुष्टि *(Corroboration of Truth)*

दस्तावेजों की जाँच के लिए जो भी उपाय सम्भव रूप में अपनाया जा सके, अपनाया जाना चाहिए। सामान्य रूप से किसी दस्तावेज की सत्यता की जाँच के लिए यह विधियां अपनाई जाती हैं–

(1) लेखकत्व (Authorship)–किसी दस्तावेज की सत्यता की पुष्टि लेखक से की जा सकती है। लेखक का नाम निर्धारण और उसकी पहचान उसके जीवन वृत्त से होती है। यदि यह उसके अपने लेखन से ही प्राप्त होना सम्भव होता है तो यही उसकी पहचान है और दस्तावेज को विश्वसनीय माना जा सकता है। उदाहरणस्वरूप बहुत समय तक यह विश्वास प्रचलित रहा कि **बाइबिल** की रचना एक व्यक्ति द्वारा की गई है। किन्तु इसके आलोचनात्मक विश्लेषण से यह बातें स्पष्ट हुईं कि **जुदाह** के दो सौ वर्ष बाद **साइरस** ने पर्शिया पर राज्य किया था, जबकि बाइबिल के प्रथम अध्याय में **जुदाह** का वर्णन है, और **साइरस** का पैंतालीसवें अध्याय में। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि **बाइबिल की रचना "इसियह"** (*Isaiah*) ने नहीं की। दूसरी ओर यह कहा जा सकता है कि बाइबिल तीन पैगम्बरों की कृति है, जबकि दो पैगम्बरों के नाम नहीं मिलते, अतः सुविधा के लिए इन्हें **इसियह द्वितीय** (*Isaiah the Second*) तथा **इसियह तृतीय** (*Isaiah the Third*) कहा जाता है।

वस्तुतः लेखक के नाम की पहचान दस्तावेज की प्रामाणिकता के प्रति विश्वास पैदा करती है। कभी-कभी कृति का श्रेय किसी सार्वजनिक व्यक्ति को दे दिया जाता है, जैसे राष्ट्राध्यक्षों या राजनीतिक महानुभावों के भाषण आदि जो प्रायः उनके सहायकों द्वारा लिखे जाते हैं। **जार्ज वाशिंगटन** का विदाई भाषण **मैडिसन** (*Madison*) ने तैयार किया था तथा बाद में **अलेक्जेण्डर हैमिल्टन** (*Alexander Hamilton*) ने इसे पूरा किया। यह तो एक परम्परा-सी बन गई है।

(2) दस्तावेज की तिथि (Date of Document)–दस्तावेज की प्रामाणिकता का सत्यापन उसके लेखन, प्रकाशन, प्रकाशन स्थान तथा अन्य संगत सूचनाओं से भी किया जा सकता है। अतीत के दस्तावेजों पर जो तिथि का ज्ञान नहीं कराते उनके लेखन काल का निर्णय उनकी भाषा, लेखन परम्परा आदि से करने की चेष्टा करनी पड़ती है।

(3) मूल पाठ का सत्यापन (Textual Certification)–कभी-कभी विश्वसनीय दस्तावेजों में भी त्रुटियाँ रह जाती हैं। प्राचीन काल के दस्तावेज हस्तलिखित होते थे, उनमें भूलें कम होती थीं, क्योंकि वह कुशल लेखकों द्वारा तैयार कराए जाते थे। मूल लेखक की रचनाओं की प्रतिलिपि बहुत सावधानी से तैयार की जाती थी, लेकिन वर्तमान काल में मुद्रण कार्य में कुछ असावधानियाँ होने से ऐसी भूलें प्रायः देखने को मिलती हैं। इसकी जाँच करना भी इतिहासकार का कर्तव्य है।

मूल विषयक पुनर्स्थापन (Recarnation of the Original form)—प्राचीन दस्तावेजों या अभिलेखों को भाषा परिवर्तन के कारणों से पुनर्स्थापित करना कठिन काम है। प्राचीन भाषाएं तथा उनकी लिपियाँ जानने के लिए जो कला विकसित हुई उसने इस कार्य में बहुत सहायता दी है। इस कार्य में **भाषा शास्त्र** (*Philology*) भी बहुत सहायक रही है।

पुरातत्ववेत्ता भी इतिहासकार की मदद करते हैं। मुद्राशास्त्री भी इतिहासकार को मुद्रा सम्बन्धी विवरण देकर इतिहासकार को मार्गदर्शन देते हैं। **प्रो० गोटचाक** ने कहा है कि "आजकल इतिहासकार का काम आसान कर दिया गया है। उसकी सहायता के लिए इतिहास के सहायक विज्ञान का आविष्कार हो चुका है। इससे झूठे इतिहास या दस्तावेज की प्रामाणिकता की जाँच करना सरल हो गया है।"

(4) उचित अर्थ का प्रयोग (Assignment of Proper Meaning)–दस्तावेजी लेखों का वास्तविक अर्थ करने और समझने का कार्य काफी कठिन होता है। प्रायः समय के साथ शब्दों के अर्थ भी बदलते रहते हैं तथा उनके पर्याय में विभिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। अतः इतिहासकार को दस्तावेजों में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या और अर्थ स्पष्ट करना बहुत महत्त्व की बात है। विविध घटनाओं की जानकारी के लिए इतिहासकार को **भाषा शास्त्र** का भी स्तरीय ज्ञान होना परमावश्यक है।

आन्तरिक आलोचना *(Internal Criticism)*

लैगलोई और साइनोबो के अनुसार, **"आन्तरिक आलोचना उपमाओं की सहायता से जो सामान्य मनोविज्ञान से ली जाती है, दस्तावेज लेखक की मनोस्थिति जानने के लिए की जाती है।"**

दस्तावेज लेखन में लेखक की प्रासंगिक तथा भावाश्रित भाषा का प्रयोग होता है अतः इतिहासकार को दस्तावेज के मूल रूप से परिचित होना चाहिए। इतिहासकार की एक सबसे बड़ी कमजोरी यह होती है कि उसे यदि किसी दस्तावेज के मूल पाठ में कोई शब्द, वाक्य आदि उसकी अपनी पूर्वाग्रही धारणा को पुष्ट करने वाली प्राप्त हो जाए तो वह दस्तावेज के संपूर्ण चित्र को ही अपनी पूर्वाग्रही धारणा से रंग देता है। इतिहास को अपनी इस कमजोरी पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। ऐसा संभव है कि दस्तावेज का आलेख इतिहासकार के विचारों का समर्थन नहीं करता हो, ऐसी स्थिति में उसे दुराग्रही नहीं होना चाहिए।

आन्तरिक आलोचना के दो रूप होते हैं–स्वीकारात्मक आलोचना (*Positive Criticism*) तथा नकारात्मक आलोचना (*Negative Criticism*)।

(क) स्वीकारात्मक आलोचना (Positive Criticism)–इस प्रकार की आलोचना किसी बात के शाब्दिक तथा वास्तविक अर्थ के प्रति केन्द्रित रहती है। प्रायः दस्तावेजों के लेखन की समयनिष्ठता अर्थात् सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को जो दस्तावेज लेखन के समय रहा हो यथातथ्य अवगमनानुसार ग्रहणता, इसका मुख्य तत्त्व है। विभिन्न संदर्भों में समय के साथ शब्दों के अर्थों में अन्तर

आता है। भाषा और शैली में भी परिवर्तन होता है। अतः तात्कालिक रूप में दस्तावेजी-भाषा का क्या अर्थ हो सकता है, इतिहासकार को हृदयंगम करना आवश्यक होता है। इसके बिना इतिहासकार दस्तावेज के मूल चिन्तन को समझ नहीं सकता। सरकारी दस्तावेजों में इस प्रकार से किसी दस्तावेज की व्याख्या करने में इतनी अड़चन नहीं आती जितनी धार्मिक, साहित्यिक, व्यक्तिगत पत्रों आदि की व्याख्या करने में आती है। कभी-कभी यह भी समझ में नहीं आ पाता कि लेखक ने किस शब्द का प्रयोग द्वि-अर्थक रूप में किया है या एकार्थक रूप में। अतः वास्तविक अर्थ का ज्ञान कठिनता से ही हो पाता है। इस प्रसंग में बहुत सुन्दर उदाहरण हैं–प्राचीन संस्कृत में 'मांस' शब्द का प्रयोग कई उपाख्यानों में हुआ है। मांस का अर्थ फलों का गूदा और जीव-जन्तुओं का गोश्त (चूँकि वह गूदा ही है) दोनों ही है। आधुनिक समय में 'मांस' का अर्थ केवल 'गोश्त' से लिया जाता है। अतः वर्तमान इतिहासकारों ने प्राचीन ग्रन्थों में जहाँ मांस शब्द का प्रयोग हुआ है उसको फल आदि का गूदा न मानकर गोश्त मान लिया है और समस्त प्राचीन भारतीय संस्कृति को मांसभोजी (गोश्तखोर) करार दे दिया है। ऐसी मान्यता भारतीय वैदिक संस्कृत के पूर्णतः विपरीत है, जो प्राचीन ग्रन्थों से ही सिद्ध होती है। अतः इतिहासकारों को किसी शब्द के सामयिक अर्थ का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

(ख) नकारात्मक आलोचना (Negative Criticism)–**प्रो० हॉकेट** का कथन है कि सभी चश्मदीद गवाह उत्तम पर्यवेक्षक नहीं होते। अतः विश्वसनीय साक्ष्य कई कारकों पर निर्भर करती है। यदि किसी ने कोई घटना देखी भी होती है तो यह आवश्यक नहीं कि वह उसका ठीक वर्णन भी कर दे। अतः विश्वसनीय साक्ष्य कई कारणों पर निर्भर करते हैं, जिनमें गवाही की इच्छा तथा योग्यता भी शामिल है।

इतिहास किसी वास्तविक दस्तावेज की बातों को सही मानकर स्वीकार नहीं कर सकता। कभी-कभी कुछ ऐसे दस्तावेज सामने आते हैं जिनमें तथ्यात्मक विरोधाभास होता है। अतः कथनों तथा तथ्यों का उन्मूलन आवश्यक है।

प्रो० गोटचाक के अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्य की विश्वसनीयता चारों बातों पर निर्भर है–

(क) क्या गवाह सत्य बोलने योग्य था?
(ख) क्या गवाह सत्य बोलने की इच्छा करता था?
(ग) क्या घटना के विषय में सही ढंग से सूचित किया गया?
(घ) क्या कोई स्वतन्त्र साक्ष्य है जिससे प्रधान गवाह के बयान की जाँच की जा सके?

जब वे साक्ष्य किसी एक तथ्य पर सहमत हो जाते हैं तो ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वे स्वतन्त्र ढंग से इनकी सत्यता को स्वीकार करते हैं, लेकिन इस बात की भी पुष्टि होनी चाहिए कि दोनों ने तथ्यों को किसी एक स्रोत से तो प्राप्त नहीं किया है या वे एक-दूसरे से किसी अन्य प्रकार से प्रभावित नहीं हुए हैं। जब यह साबित हो जाए कि दोनों पर्यवेक्षण स्वतंत्र ढंग से किए गए हैं तो ऐतिहासिक तथ्य की स्थापना हो जाती है। **लैगदोई और साइनोबो** के शब्दों में, **"वे पर्यवेक्षण निश्चित रूप से एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं जो विभिन्न दस्तावेजों में विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए हैं, जो विभिन्न समूहों के हैं या जिन्होंने विभिन्न परिस्थितियों में कार्य किया है। आधुनिक काल में संदर्भों को छोड़कर इस तरह के उदाहरण दुर्लभ हैं।"**

प्रो० गोटचाक के शब्दों में, **"दस्तावेज की सामान्य विश्वसनीयता लेखक की सत्यता की प्रतिष्ठा, दस्तावेज में विरोधाभास का अभाव, असामयिकता का अभाव तथा लेखक के साक्ष्य, जो अन्य तथ्यों से समता रखते हों, पर निर्भर हैं।"**

कभी-कभी एक ही तथ्य पर अनेक स्वतंत्र दस्तावेज मिल जाते हैं, जिनमें समान तथ्य होने के बावजूद भी तथ्य की सत्यता साबित नहीं होती। अतः गलत तथ्यों और कथनों का उन्मूलन आवश्यक है। लेकिन इतिहासकारों का विचार है कि जिन तथ्यों को सत्य साबित नहीं किया जा सकता उन्हें अल्पकाल के लिए सन्देहजनक तो अवश्य माना जा सकता है। यह तथ्य निषेधात्मक आलोचना के क्षेत्र में आते हैं। इनकी विश्वसनीयता की जाँच एक समस्या ही होती है।

□□

11

इतिहास में कारण
[Causation in History]

1. **इतिहास की व्याख्या के लिए कारणों के योगदान का विश्लेषण कीजिए।**
(Analyse the role of causation in the interpretation of history.)

अथवा

इतिहास में कारण-कार्य संबंध की विवेचना कीजिए।
(Discuss the causation in History.) **(M.D.U. 2007, 2011, 2012)**

अथवा

इतिहास में कार्यकारण के सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।
(Discuss the theory of causation in History.)

अथवा

"इतिहासकार द्वारा चयन किए गए कारकों से ही उसकी पहचान होती है।" क्या आप सहमत हैं?
("A historian is known by the causes he deduces." Do you agree?)

अथवा

इतिहास में कारण-कार्य संबंध का परीक्षण कीजिए। कारण-परिणाम संबंधों का भी निर्धारण कीजिए।
(Examine the problem of causation in history. Also determine the cause- effect relationship.)

अथवा

इतिहास में कारणवाद के सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
(Discuss the theory of causation in History.)

अथवा

इतिहास में कारण की अवधारणा से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।
(What do you understand by the concept of causation in History? Explain.)

उत्तर–प्रत्येक कार्य के मूल में कोई न कोई कारण होता है, जो उसे संपन्न कराता है। यह एक प्राकृतिक व्यवहार है, जिसकी धुरी पर संसार में होने वाली घटनाएं घूमती रहती हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस बात का अनुभव कर सकता है। मनुष्य का विवेक इस सत्य का दर्शन नित्य और हर क्षण करता है। प्रकृति के पटल पर चाहे हमें कुछ स्वाभाविक रूप से होता हुआ प्रतीत होता हो, लेकिन वैज्ञानिकों ने उसमें कारण की खोज की है। जैसे–मौलिक रूप से स्थूल प्रत्येक वस्तु निर्लम्ब होने पर पृथ्वी की ओर ही क्यों गिरती है? स्वाभाविक-सी दिखाई देने वाली इस प्राकृतिक क्रिया का भेद तभी मालूम हुआ जब 'न्यूटन' ने यह सोचा कि इस क्रिया का भी कोई न कोई कारण तो होना चाहिए। इसी विवेक बुद्धि ने जब प्रकृति की ऐसी ही स्वाभाविक क्रियाओं के बारे में सोचना शुरू किया, तो भौतिक विज्ञान का जन्म हुआ। मनुष्य जो कुछ करता है उसके कारणों की खोज 'मनोविज्ञान' में की गई। कहने का तात्पर्य यह है कि कारण प्रत्येक क्रिया और

घटना के पीछे होते हैं। कारण के विविध पहलुओं को निम्न पारिभाषिक कथनों के माध्यम से समझा जा सकता है, जो इस प्रकार हैं–

कॉलिंगवुड का कहना है कि "कारण वह तत्त्व है जो मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित तथा बाध्य करता है।"

मैंडेलबाम ने लिखा है कि "ऐतिहासिक ज्ञान मानवीय मस्तिष्क की प्रक्रिया में निहित है, जिसे कारणों से ही पहचाना जा सकता है।"

ई. एच. कार का कथन है कि "इतिहास का अध्ययन कारणों का अध्ययन है।"

डेविड थॉमसन ने लिखा है कि "वर्तमान पूर्णतः अतीत का ही परिणाम है। वर्तमान की प्रत्येक उपलब्धि के पीछे ही नहीं गति के पीछे भी अतीत ही कारण रूप में उपस्थित रहता है। जैसे–यूरोप और अमेरिका के वर्तमान की आधारशिला वह सांस्कृतिक चिन्तन है जो वहां के समाज में स्वयं उदित हुआ।"

रेनियर का मानना है कि "घटना का कोई एक कारण नहीं अपितु अनेक कारण होते हैं।"

रोसेनफील्ड ने "घटनाओं की क्रमबद्धता एवं कारण और परिणाम के पारस्परिक संबंधों को क्रम से प्रस्तुत करने को इतिहास कहा है।"

शिलर के अनुसार, "मानवीय कार्य अथवा घटना के कारणों को जानने का एकमात्र उद्देश्य किसी तर्कयुक्त योजना का ज्ञान प्राप्त करना है।"

वाल्श ने "कारणों में से प्रमुख कारण एवं सहायक कारणों को पृथक करके देखने पर बल दिया है।"

टेने का कहना है कि "इतिहासकार कारणों के बिखरे सूत्रों को सूक्ष्म से सूक्ष्म दृष्टि से देखकर उसे बुनकर कपड़े के रूप में प्रस्तुत करता है, जैसे–मकड़ी अपने जाल को बुनती है।"

मार्क्स ने आर्थिक अवधारणा के पक्ष में कहा है कि "मनुष्य के कार्यों का कारण भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा वातावरण होते हैं और मानवीय इतिहास इन्हीं कारणों का परिणाम होता है।"

अरस्तू ने कहा है कि "बिना किसी कारण के किसी कार्य का होना संभव नहीं है।"

जे. बी. ब्यूरी का कहना है कि "कार्य-कारण सभीकरण रेल-पटरी की भाँति समानान्तर है।"

मैडेलबाम की उक्ति है, "जो किसी वस्तु को उत्पन्न करता है, अथवा वस्तु में परिवर्तन करता है, उसे कारण कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के सामान्य अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इतिहास में सभी घटनाओं के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कोई कारण कोई घटना घटित नहीं होती है। इतिहासकार भी इस कारण-कार्य व्याख्या के परिवेश में अन्तर्निहित कारणों की खोज करता है।

इतिहास में कार्य-करण की अवधारणा *(Concept of Causation in History)*

घटनाओं से ही इतिहास का निर्माण होता है और घटनाएं बिना कारण के घटित नहीं होतीं। इसलिए यदि इतिहास का अध्ययन करना होगा तो हमें मनुष्यों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की पृष्ठभूमि में छिपे उनके कारणों को जानने की चेष्टा करनी पड़ेगी। हालांकि प्रो. ओकशाट ने कहा है–वे कारण इतिहास के शब्दकोश का अंग नहीं हैं। उनके इस कथन का कारण उनका इतिहास को विज्ञान स्वीकार न करना हो सकता है। हमें तो हमारा विवेक उनके इस कथन का कारण खोजने की प्रेरणा देता है अर्थात् बहुत-सी बातें और घटनाओं के कारण में भी कारण निहित हो सकते हैं। जैसे सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण केवल इसलिए किया कि कलिंग के युद्ध में उसके द्वारा भीषण रक्तपात हुआ। क्या उसके इस कार्य के पीछे और कोई कारण नहीं हो सकता? यदि उसने बौद्ध धर्म उपरोक्त कारण से ग्रहण किया तो उसका प्रचार इतने बड़े पैमाने पर क्यों किया? उसने अपने पुत्र तथा पुत्री तक को इस प्रचार कार्य में क्यों लगाया? अवश्य ही इन सब बातों का कोई एक कारण नहीं हो सकता है। जब हम किसी कारण के पीछे कारण खोजने का प्रयास करते हैं तो संभवतः उसका कारण भी घटना का विश्लेषण करने की प्रवृत्ति के कारण होता है। अतः इतिहास को निश्चित रूप से घटनाओं में सुषुप्त कारणों का निदान भी कहा जा सकता है। मैंडेलबाम इसी बात को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि **"ऐतिहासिक ज्ञान मानवीय मस्तिष्क की प्रक्रिया में निहित है।"**

यदि हम इतिहास को केवल अतीत या वर्तमान की घटनाओं का निरूपण मात्र मानें, उनके कारणों का निदान न करें, तो निश्चित रूप से हमें भी प्रो. ओकशाट की तरह यही कहना चाहिए कि कारण इतिहास के शब्दकोश का अंग नहीं है। घटना ही कारण है तथा कारण ही इतिहास। कारणों की अवधारणा के विविध पहलुओं को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत आसानी से समझा जा सकता है जो इस प्रकार हैं–

1. घटना ही कारण है–आज के मनुष्य के सामने उसके अतीत का विस्तृत प्रांगण फैला हुआ है जिसमें उसकी सफलताएं तथा असफलताएं आदि का दर्शन होता है। उसका अतीत उसके सामने कम-से-कम और किसी बात में नहीं तो परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा सांस्कृतिक व्यवहार और धर्म में अन्तर्निहित है। अतः उसकी विवेकशीलता यदि उनके अध्ययन की ओर प्रेरित करती है तो उसे उनसे अपने इतिहास को रचने की प्रेरणा प्राप्त होगी ही, जिसमें स्वाभाविक रूप से कारणों की ओर ध्यान दिया ही जाएगा। कभी मनुष्य पानी की सुलभता को ध्यान में रखते हुए जल स्रोतों के पास अपनी बस्तियाँ बसाता था, लेकिन कभी संयोग से उसे यदि जल पृथ्वी के गर्भ से भी निकलता दिखाई दिया तो उसने उसे प्राप्त करने के लिए कुएं बनाए। इतिहास की सीमा में मनुष्य की यह बात भी इस स्थिति में आ ही जाती है कि मनुष्य ने नदी के किनारों से हटकर भी चौड़े मैदानों में अपनी बस्तियाँ क्यों बसाईं और यदि वहाँ बसाईं तो कब बसाईं। इस तथ्य के प्रति जिज्ञासा के संदर्भ मनुष्य को इतिहास की भूमि प्रदान करते हैं। परन्तु इससे आगे कि पानी भूगर्भ में कहाँ से आता है, कैसे आता है, पानी क्या है, यह इतिहास के क्षेत्र की बातें हैं। इसी प्रकार मनुष्य ने यातायात के साधन कब से बनाना शुरू किया या यातायात के लिए घोड़े, गधे, ऊँट, आदि पशुओं से काम लेना कब शुरू किया आदि बातें भी इतिहास के क्षेत्र की ही हैं। इस प्रकार मनुष्य की सांस्कृतिक प्रक्रिया और उपलब्धियाँ उनसे जुड़ी हुई घटनाओं को यदि इतिहास कहा जाएगा तो उसमें उनकी ऐसी उपलब्धियों के कारणों का ज्ञान किए बिना अवश्य ही इतिहास अधूरा ही रहेगा। अतः स्वाभाविक है कि यह माना जाए कि इतिहासकार मनुष्य को बाध्य करने वाले तत्त्वों का अध्ययन कारण के रूप में करे।

2. वर्तमान अतीत पर आधारित–इतिहासकार द्वारा अतीत की घटनाओं के पीछे कारणों के अन्वेषण का एकमात्र उद्देश्य भी इस कारण का ही प्रतीक है कि वर्तमान का निर्माण अतीत की आधारशिला पर हुआ है। डेविड थामसन ने लिखा है कि वर्तमान पूर्णतः अतीत का ही परिणाम है। वर्तमान की प्रत्येक उपलब्धि के पीछे ही नहीं गति के पीछे भी अतीत ही कारण के रूप में उपस्थित है। जिस संस्कृति में अध्यात्म ने जन्म लिया तो वहां सांस्कृतिक जीवन का मूल्य कम ही रहा। पाश्चात्य संस्कृति में चर्च ने राज्यों को अपने नियन्त्रण में रखने की चेष्टा की, परन्तु इसके विपरीत भारत में साधु-महात्माओं ने भौतिक जीवन पद्धति से दूर रहकर राजनीति में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इसके पीछे भी कुछ न कुछ कारण ही रहे होंगे। शायद पाश्चात्य जीवन की आवश्यकताओं ने भी आधुनिक समाज को भौतिकवाद का स्वाद चखाया। भौतिक आवश्यकताएँ तो प्रत्येक संस्कृति की आधारशिला हैं, परन्तु उनके प्रति लगाव किसका, कितना और किस तरह का है, इसी के भेद विभिन्न संस्कृतियों का रूप निर्माण करते हैं। इतिहास इसी रूप निर्माण में झांकता है, उसके साक्ष्यों का अध्ययन करता है तथा उनकी प्रभावोत्पादकता की गहराई भी नापता है। हालांकि यह सामाजिक जीवन का विषय है, परन्तु कारण रूप में यह इतिहास में भी शामिल है। सार्वभौमिक नियम के अनुसार, घटना के कुछ कारण होते हैं। **हाल्फेन** ने भी लिखा है कि **"क्रय-विक्रय, दान, विनिमय, न्यायालय में न्याय, प्रशासनिक अध्यादेश के पीछे कुछ कारण निहित होते हैं। इतिहासकार का कार्य व्याख्या के परिवेश में अन्तर्निहित कारणों को ढूँढ़ना है।"**

3. इतिहास की विश्लेषण पद्धति–वस्तुतः इतिहासकारों ने इतिहास को विज्ञान मानकर उसकी विश्लेषण क्रिया में कारणों को जानने का समावेश किया है, परन्तु इतिहासकारों द्वारा ही उसकी विश्लेषण पद्धतियों को अलग-अलग तरह से निर्धारित करने में अपनी वैज्ञानिकता से वैचारिक भिन्नता को खुले रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस कारण इसके कठोर रूप से निश्चित विज्ञान होने के स्वरूप पर शंका होना स्वाभाविक है। चूंकि किसी घटना या घटनाक्रम विशेष के कारणों का निष्पादन करने में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं होता। सामान्यतः इतिहास में कार्य-कारण का सिद्धांत उसके विज्ञानवाद में संकुचित भी नहीं है। कोई भी

इतिहासकार चाहे वह इतिहास के प्रति विज्ञानवादी हो या नहीं हो, कार्य के कारण को अवश्य खोजता है और चूंकि किसी भी घटना के पीछे नैतिक, भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक और परिस्थितिजन्य कारण होते हैं। इसलिए उनके प्रति इतिहासकार की सोच भी समान नहीं होती। 20वीं शताब्दी के इतिहासकारों की अवधारणा है कि किसी घटना के कारण क्रमबद्ध होते हैं। अतः इतिहासकार को ऐतिहासिक शोध में घटनाओं को प्रभावित करने वाले सभी कारणों की व्याख्या करनी चाहिए।

4. वैचारिक भिन्नता–विद्वानों की वैचारिक विभिन्नता इतिहास में कारण की अवधारणा के विविध स्वरूप प्रस्तुत करती है, जिसके लिए इतिहासकारों का वैचारिक चिन्तन और दर्शन ही उत्तरदायी होता है। अतीत की वर्तमान के संदर्भ में व्याख्या करने के उद्देश्य इतिहास की वैचारिक सीमाओं को कहीं प्रतिबंधित नहीं करते। अतः अतीत की घटनाओं तथा मानव के कार्य व्यवहार, जिनसे संस्कृतियों का निर्माण होता है, मुख्य विचारधारा के दास होते हैं। ऐतिहासिक अतीत में विकासवादी प्रवाह को अवरुद्ध रखने वाली सीमाओं के कारण प्रगतिवादी इतिहासकारों की अवधारणाओं के रूप में वर्तमान में भी मिल जाते हैं। अतः वह कारणों के क्रमबद्ध अनुशीलन स्वरूप भी स्वयं ही निर्धारित कर लेते हैं। वह तात्कालिक सांस्कृतिक और घटना परिवेश को शाश्वत परिवेश मानकर चलते हैं। निश्चित रूप से किसी घटना के कारणों को जानने का यह परिकल्पनात्मक सिद्धांत है। जैसे–वर्तमान काल इतिहास का औद्योगिक काल है। राजनीति और सामाजिक रंगमंच पर औद्योगिक संस्कृति के कर्णधार विराजमान हैं। अतः कारणों की अवधारणा आर्थिक ताने-बाने के भीतर घूमती है और सभी कारणों में आर्थिक कारण को महत्व दिया जाता है। **बट्रेण्ड रसेल** ने इसकी आलोचना की है और कहा है कि "ऐसा करके इतिहास को अनैतिहासिक बनाया गया है।"

5. कारण परिस्थिति विशेष की उपज–प्रत्येक कारण परिस्थिति विशेष की उपज होता है। **कालिंगवुड** ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि **"इतिहासकार परिस्थितिजन्य कारणों की व्याख्या में अपने सिद्धांत तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण से विशेष प्रभावित होता है। इतिहासकार का पूर्वाग्रही विचार ही प्रायः व्याख्या प्रधान होता है।"** कार्य-कारण में कोई समानता नहीं होती, अपितु वह किसी फल के बीज और गूदे की तरह होते हैं तो असत्य नहीं होगा। वाल्श के अनुसार कोई एक कारण निर्णायक कारण के रूप में नहीं मानना चाहिए। यह स्वाभाविक रूप से अमान्य नहीं किया जा सकता है कि मनुष्यों के कार्यों की पृष्ठभूमि में कारण नहीं होते। अतः स्वाभाविक यह भी है कि घटना के पीछे क्या कारण हो सकते हैं। उन्हें ढूंढ़कर मनुष्य अपनी मानसिक जिज्ञासा को शान्त करे। इतिहासकार भी इस कारण-कार्य व्याख्या के परिवेश में अन्तर्निहित कारणों की खोज करता है। सर्वप्रथम अरस्तू ने कहा था कि बिना किसी कारण के किसी कार्य का होना संभव नहीं है। इतिहासकारों की कारण व्याख्या का उनकी जाति, राष्ट्रीयता, धर्म तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण आदि पर प्रभाव पड़ता है।

6. कारण का आर्थिक स्वरूप–मार्क्स ने आर्थिक अवधारणा का पक्ष लेते हुए कहा है कि मनुष्य के कार्यों का कारण भौगोलिक परिस्थितियों तथा वातावरण होते हैं और मानवीय इतिहास इन्हीं कारणों का परिणाम होता है। यदि हम इतिहास की इस व्याख्या को मार्क्स की आर्थिक पूँजीवादी और सर्वहारावादी धारणा से अलग करके देखें तो यह धारणा उचित लगती है। परन्तु उसकी आर्थिक अवधारणा में एक शाश्वत रूप, सांस्कृतिक चिन्तन शोषक और शोषित का संयुक्त रूप है, जिसे वह स्वयं भौगोलिक परिस्थितियों तथा वातावरण की प्रशस्त रूपरेखा के साथ समायोजित नहीं कर पाता। वह वर्तमान को ही इतिहास का प्रारम्भ मानता है तथा अतीत को नकार कर भी अतीत को भी शाश्वत रूप में समाज के आर्थिक जीवन और संस्कृति को शोषकों की शाश्वत संस्कृति मानता है। **डॉ. लोहिया** के अनुसार, **"लक्षणों या चिह्नों की बातें करना कारण बताना नहीं होता।"** इस तरह कारण की अवधारणा को विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है और कार्य-कारण के संबंध को अन्योन्याश्रित बताने का प्रयास किया है।

कार्य-करण के संबंध में मैंडेलबाम का कथन है जो किसी वस्तु को उत्पन्न करता है, अथवा वस्तु में परिवर्तन करता है, उसे कारण कहते हैं। उसके प्रभाव से परिवर्तित स्वरूप को प्रभाव कहते हैं। मनुष्य का कार्य तथा बाह्य आभ्यन्तर प्रभावों का ही परिणाम होता है। सम्राट अकबर की राज्य-नीति तथा धार्मिक नीति

के कारणों की व्याख्या करते हुए इतिहासकार अपने को अकबर की परिस्थिति में रखकर उसी के रूप में समस्याओं पर विचार करता है। परिस्थितियां बाह्य पक्ष होती हैं। अकबर की भावनाओं की अनुभूति कारण का आभ्यन्तर पक्ष होता है। मैंडेलबाम के अनुसार, किसी घटना के प्रमुख कारण को कारण कहते हैं तथा घटना से संबंधित छोटे-छोटे कारणों को परिस्थिति कहते हैं। यहां इस कार्य कारण का जो अनुमान इसके व्याख्या पक्ष द्वारा लगाया जाता है, उसे यदि हम इतिहासकार के पूर्वाग्रही सिद्धान्त और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जोड़ दें तो हम उसकी निष्पत्ति से भी यथार्थ परिणाम पर नहीं पहुंच सकते, यह भी ध्यान रखने की बात है।

2. इतिहास में अवसर तथा नियतिवाद की भूमिका का वर्णन कीजिए।
(Explain the role of chance and determinism in History.)

अथवा

इतिहास में अवसरों की भूमिका का वर्णन कीजिए।
(Explain the role of chance in History.)

उत्तर–I. इतिहास में नियतिवाद (Determinism in History)–नियतिवाद के अनुसार यह माना जाता है कि घटनाएँ किसी अज्ञात पूर्व निर्धारित प्रक्रिया का परिणाम होती हैं। दूसरे शब्दों में, इसे एक विश्वास माना गया है, जिसके अनुसार जो कुछ घटित होता है, उसके एक या अनेक कारण होते हैं और उस कारण या कारणों से भिन्न हुए बिना दूसरे तरीके से घटित नहीं हो सकता। अर्थात् जो कुछ घटित होता है वह निश्चित कारणों की प्रक्रिया में निहित होता है। नियतिवादी विश्वास के अनुसार मनुष्य नियति की प्रेरणा से कार्य करता है। बाह्य, आन्तरिक तथा अलौकिक शक्तियाँ मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित प्रेरित तथा विवश करती हैं। इतिहास की भारतीय तथा यूनानी अवधारणा, हीगेल की विश्व-आत्मा, एडम स्मिथ का गुप्त हस्त, कार्ल मार्क्स का अलौकिक शक्ति के हस्तक्षेप में अटूट विश्वास प्रमाणित करता है कि मनुष्य की इच्छा के विपरीत परिणाम प्राप्त होता है। इसी प्रकार अरब के प्रसिद्ध इतिहासकार इब्न खल्दून की 'इतिहास संबंधी अव्ययी व्याख्या भी यह प्रमाणित करती है कि इतिहास प्रवाह में प्रवाहित होकर मनुष्य कार्य करता है। कार्य के संबंध में न तो व्यक्ति की कोई इच्छा होती है और न ही स्वतन्त्र अस्तित्व। मनुष्य की शारीरिक व्याख्या के अनुसार–बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था होती है, उसी प्रकार किसी राजवंश तथा राज्य की स्थापना, विकास-संगठन, चरमोत्कर्ष तथा पतन अवश्यम्भावी है।'

नियतिवादी अवधारणा की व्यापक व्याख्या मनीषियों ने धर्म ग्रन्थों तथा हिन्दू-दर्शन में की है। जहां पुरुषार्थ असफल होता है, वहीं भारतीय मनीषियों ने नियतिवादी अवधारणा की पुष्टि की है। न्याय-वैशेषिक सिद्धांत में जहां यथार्थवाद की पुष्टि होती है कि परमाणुओं का अपना अस्तित्व है, वहीं एक सर्वोपरि क्रियात्मक सत्ता के उपादान कारण को मान्यता प्रदान की गई है। कारण के वैयक्तिक अस्तित्ववाद का खण्डन किया गया है। यूनानी तथा भारतीय इतिहास अवधारणा **युग चक्रवादी** सिद्धांत पर आधारित है। इसके अनुसार–कृता, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग का एक समय चक्र है। इसमें पुरुषार्थ का पतन चक्र चलता है। घोर नैराश्य में परम सत्ता विराट पुरुष की निर्णायक भूमिका को स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार धर्म का उत्थान तथा पतन होता है। मानवीय सक्रियता तथा जाग्रत अवस्थाएँ समसामयिक प्रवृत्तियों द्वारा सतत नियन्त्रित होती रहती हैं। युग परिवर्तन में मनुष्यों की क्रिया-शक्ति प्रच्छन्न रहती है। व्यक्ति समष्टि (प्रकृति) के अधीन है। प्रकृतियों की तुलना में व्यक्ति का कोई महत्त्व तथा अस्तित्व नहीं है। इन प्रकृतियों को अधिकांश इतिहासकारों ने इतिहास प्रवाह की संज्ञा दी है। अरब के महान इतिहासकार इब्न खल्दून की इतिहास संबंधी अवयवी धारणा अटल नियतिवाद की पुष्टि करती है। जिस प्रकार मानव जीवन का स्वरूप चक्रीय है–बाल्यावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था, उसी प्रकार मानव जीवन की चरणबद्ध अवस्थाएँ प्राकृतिक एवं नियति के अनुसार अटल हैं।

हिन्दू दर्शन में एक सर्वव्यापी विराट पुरुष के माध्यम से प्राकृतिक तथा सामाजिक तत्त्वों का अद्भुत समन्वय भारतीय ऋषि-मुनियों के विश्वास का परिणाम है, जिसको वह सूर्य की चमक में, बादलों की गरज

अथवा

आधुनिक विज्ञान विधा की विशेषता के रूप में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से आप क्या समझते
(What do you understand by Historical objectivity as characteristic of modern science?)

उत्तर–

I. इतिहास में वस्तुनिष्ठता की समस्या *(Problem of Objectivity in History)*

इतिहास में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का विवाद समय के साथ लगातार गहराता जा रहा है। इतिहा का अतीत तथा उसकी प्रकृति इसको वस्तुनिष्ठ स्वरूप देने में सबसे बड़ी बाधा है। दूसरी तरफ समकाली समय में कोई भी बात तथ्य के बिना स्वीकार करने को कोई भी तैयार नहीं है। ऐसी परिस्थितियों हमारे लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता की समस्या का स्वरूप क्या है तथा इस समस्या को किस प्रकार से सुलझाया जा सकता है। अतः निम्नांकित समस्याएं जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आती हैं उनका वर्णन इस प्रकार है–

1. इतिहास अतीत का चित्रण है–आधुनिक इतिहासकार बाह्य विधाओं द्वारा इतिहास के स्वरूप को वस्तुनिष्ठ बनाने का प्रयास करते हैं, परिणामस्वरूप ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता दार्शनिकों तथा इतिहासकारों के बीच गम्भीर चर्चा तथा विवाद का विषय बन गया है। इतिहासकार अतीत का चित्रण किसी विशेष दृष्टिकोण, अवधारणा, संस्कार, व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष तथा भ्रांति के परिवेश में प्रस्तुत करता है। यदि इसे यथार्थ मान लिया जाए तो इतिहासकार का निष्कर्ष कैसे निष्पक्ष हो सकता है। **कार्ल मार्क्स, स्पेंगलर** तथा **कार्ल मेनहीम** ने विशेष दृष्टिकोण से अतीतकालिक घटनाओं की व्याख्या की है। **प्रो. वाल्श** ने तो स्पष्ट लिखा है कि इतिहास का अध्ययन दृष्टिकोण विशेष से करना चाहिए। स्वाभाविक है कि इतिहास का अध्ययन यदि दृष्टि विशेष से किया जाएगा तो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की खोज व्यर्थ है।

2. मनुष्य सामाजिक प्राणी है–कार्ल मार्क्स यह मानता है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है तथा विभिन्न प्रकार के संस्कारों से आबद्ध है। इतिहासकार भी मनुष्य होने के नाते अपने समाज, धार्मिक परिवेश तथा संस्कारों आदि से प्रभावित होता है। अतः कार्ल मार्क्स का सुझाव है कि वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों को समाज के बाहर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता खोजनी चाहिए। यदि तार्किक दृष्टि से देखा जाए तो मार्क्स ठीक मालूम होता है। उदाहरणस्वरूप यह कहा जाता है कि संस्कार तथा सामाजिक वातावरण के कारण ही अरब-यहूदी, हिन्दू-मुस्लिम, रूसी-अमेरिकी इतिहासकारों में तीव्र मतभेद हैं।

3. व्यक्तिगत भावनाओं की प्रधानता–कार्ल बेकर का कहना है कि प्रत्येक पीढ़ी का इतिहासकार अपने युग का आवश्यकतानुसार इतिहास लिखता है। उसके अनुसार इतिहास की पुनर्रचना प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं के अनुकूल होती है जैसे कि औरंगजेब के संबंध में **सर जदुनाथ सरकार** तथा फारुखी की रचनाएं व्यक्तिगत भावनाओं से प्रभावित हैं। बियर्ड ने लिखा है कि इतिहास का प्रत्येक छात्र भली-भांति जानता है कि ऐतिहासिक तथ्यों के चयन में इतिहासकार द्वेष, भ्रांति, व्यक्तिगत रुचि, सामाजिक वातावरण तथा आर्थिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में इतिहासकार से वस्तुनिष्ठता की उपेक्षा करना उचित नहीं है। इतिहास में व्यक्तिगत भावनाओं को प्रधानता देने का तात्पर्य ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना है। जब ऐसा होता है और इतिहासकार तथ्यों को अपनी भावनाओं के पात्रों में आकारित करता है तो वस्तुनिष्ठता का प्रश्न ही नहीं उठता।

4. इतिहास की निरन्तर पुनर्रचना–जे. ए. रॉबिन्सन कहते हैं कि आधुनिक इतिहासकारों द्वारा संकलित ऐतिहासिक सामग्री का प्रयोग अपने युग की आवश्यकतानुसार होता है। अतः इतिहास की पुनर्रचना प्रत्येक युग के समान ही आवश्यकतानुसार की गई। एडवर्ड मेयर भी इसी मत को मानते हैं। क्रोचे ने तो स्पष्ट कहा है कि मनुष्य को अपने युग के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। इतिहास की निरन्तर पुनर्रचना इस आवश्यकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। गार्डनर के अनुसार सामाजिक आवश्यकता का कोई मानदण्ड नहीं है। एक ही ऐतिहासिक तथ्य की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता विभिन्न युगों में बदलती रहती है, उपनिवेशवाद और दास प्रथा किसी युग की सामाजिक आवश्यकता रही है, परन्तु वर्तमान काल में वह समाज के लिए अभिशाप मानी जाती है। एक ही समय में दो विभिन्न स्थानों की संस्कृतियां तथा मान्यताएं भी एक ही ऐतिहासिक तथ्य को उपयोगी और अनुपयोगी मानती हैं।

वियर्ड ने लिखा है कि "आज इतिहास का प्रत्येक छात्र यह अच्छी तरह से जानता है कि ऐतिहासिक तथ्यों के चयन में इतिहासकार तत्कालीन परिस्थितियों, संस्कारों, धर्म, रुचि, व्यक्तिगत द्वेष आदि से प्रभावित होता है, जिससे वह निष्पक्ष इतिहास नहीं लिख पाता। इस तरह के इतिहास लेखन में तथ्यों की उपेक्षा भी संभव है। ऐसी परिस्थितियों में इतिहास में वस्तुनिष्ठता कायम नहीं की जा सकती है।"

II. वस्तुनिष्ठता की उपयोगिता *(Utility of Objectivity)*

सिमल ने ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की उपादेयता को स्वीकार किया है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का सबसे उपयोगी रूप है, उसका इतिहास के पाठक पर चरित्रगत प्रभाव डालना। प्रायः पाठकों का बौद्धिक स्तर समान नहीं होता। वह किसी व्याख्यात्मक समीक्षा में तर्क के कौशल का अन्वेषण नहीं कर सकते। प्रायः वह इतिहासकारों की कृपा से ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति ऐसी धारणाओं को धारण कर लेते हैं जो सामाजिक एकरूपता को प्रभावित करती है। अतः यदि इतिहास में वस्तुनिष्ठता होती है, तो पाठक की धारणाओं पर कम-से-कम वे चित्र नहीं बनते, जिन्हें इतिहासकार लोगों के मन में बनाना चाहता है।

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता, समाज को तथ्य रूप में चिन्तन की ओर ले जाती है और इतिहास के जिज्ञासु को अतीत के सांस्कृतिक और सामाजिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक स्थिति का ज्ञान कराती है और अतीत से वर्तमान तक आए तथ्यात्मक प्रवाह के संदर्भ में उनकी सोच को परिष्कृत करती है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से ही किसी को यह ज्ञान हो सकता है कि अतीत में किसी देश के लोगों ने किन

परिस्थितियों में अपनी जीवन यात्रा की थी और किन सामाजिक बन्धनों तथा कर्तव्यों के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल रहने को विवश था।

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से ही वर्तमान संस्कृतियों को अपने वास्तविक गौरव या पराभव का ज्ञान होता है तथा उसके लिए भी उत्तरदायी परिस्थितियों का ज्ञान होता है। समाज की आर्थिक दशाएं जो सामाजिक सीमाएं रही होंगी, उनका भी परिचय ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से ही प्राप्त होता है।

निष्कर्ष यह है कि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता मनुष्य को अपने पूर्व अस्तित्व के प्रति न्यायपूर्वक सोचने की वैचारिकता प्रदान करती है। उसे इससे उन सभी धारणाओं का ज्ञान होता है, जो उसके पूर्व इतिहास के लिए उत्तरदायी रही होंगी, वह इतिहास को अपनी आँखों से देखने से प्रवृत्त होता है और इतिहास के व्याख्याकार इतिहास लेखकों के उद्देश्य को पहचानने की दृष्टि प्रदान करता है। वह ऐतिहासिक तथ्यों को दूसरों के चश्में में से देखकर गलत धारणाओं को धारण करने से बचता है।

निष्कर्ष–इतिहासकार यदि वास्तव में इतिहासकार कहलाना चाहता है तो उसे स्वयं को प्रत्येक सापेक्षता से ऊपर उठकर ऐतिहासिक तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि तथ्य स्वयं में केवल तथ्य होते हैं। तथ्य हमें किसी भी स्रोत से किसी भी रूप में प्राप्त हो सकते हैं। अतः इतिहासकार का प्रथम कर्तव्य तो यह है कि वह किसी भी तथ्य को ऐतिहासिक रूप में प्रमाणित करने से पहले उससे संबंधित स्रोत की विश्वसनीयता का विश्लेषण कर ले, अपने तर्क तथा विवेक से स्रोत की निष्पक्ष या पक्षपातिक संभावनाओं की भी समीक्षा कर ले। समय की प्रयोगशाला में मानवीय कार्यों का क्रम लगातार चलता रहता है, जिनसे कभी इतिहास के छोटे युग प्रकट होते हैं तो कभी बड़े युग। इनका घटनाक्रम सम्पूर्ण युग से संबंधित होता है। समाज, संस्कृति और भौतिक जीवन-यापन के साधन घटनाओं को प्रभावित करके उनके स्वरूप का खाका खींचते हैं। अतः इतिहासकार की सफलता इसी में है कि वह ऐसे खाके को पूरी तरह से समझ ले, बजाय इसके कि वह स्वयं अपनी कल्पनाओं से विगत घटनाओं का स्वरूप निदान कर उसका खाका तैयार करे। इतिहासकार जब तब ऐसा नहीं करेगा, वह इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या भी नहीं कर पाएगा। यदि वह ऐसा नहीं कर पाएगा तो प्रथम तो कोई सिद्धान्त ही निःसृत होना असम्भव होगा और यदि कोई सिद्धांत स्वीकार कर भी लिया गया तो वह वस्तुनिष्ठ नहीं होगा। ऐसी अवस्था में इतिहास में वस्तुनिष्ठता का होना असंभव ही है।

3. इतिहास में पूर्वाग्रह के

2. रोमन इतिहास लेखन परम्परा की विवेचना कीजिए। (Discuss the Roman History Writing Tradition.)

उत्तर–रोमन इतिहास लेखन परम्परा (Roman History Writing Tradition)–रोमन इतिहासकार यूनानी इतिहासकारों से प्रभावित थे। स्वयं यूनानियों ने इतिहास को दूर से देखना बन्द कर उसे पास से देखना शुरू कर दिया था। **हैक्टेसियस** ने मिस्र की अनेक यात्राएं की थीं और उसने फारस की भी यात्राएं की तथा 'ट्रैवल्स एराउण्ड द वर्ल्ड' ग्रन्थ लिखा। उसने परम्परागत विश्वासों की पूर्ण सत्यता और उनकी आलोचनात्मक समीक्षा पर बल दिया। उसकी सत्य के प्रति आस्था, भविष्य के इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शन बनी। इसी कारण उसे यूनानी-रोमन इतिहास परम्परा का युग पुरुष माना जाता है।

यह तो ऐतिहासिक रूप से एक तथ्य है कि यूनानी सभ्यता का जन्म कम से कम ई० पू० 2500 वर्ष पहले हो चुका था। रोमन और मिस्री सभ्यताएं भी लगभग समकालीन थीं और सबके इतिहास थे। ईसाई धर्म के उदय की पृष्ठभूमि बाइविल के ओल्ड टेस्टामेण्ट से प्रमाणित है।

रोमन इतिहासकारों में **फेवियस पिक्टर** को जिसका जन्म 254 ई० पू० हुआ था, प्रथम इतिहासकार माना जाता है। इसका इतिहास *Annals* एनरोज के शासनकाल की घटनाओं का अल्लेख करता है। वह उसका समकालीन था। उसने अपनी कृति लिखने के लिए पूर्व सरकारी दस्तावेजों और अपने परिवार के ऐतिहासिक संग्रहालय में रखी सामग्री का अध्ययन किया था। उसकी कृति का बाद के इतिहासकारों ने प्रमाण मानकर बहुत उपयोग किया।

वेरो-वेरो (Varro-Varro)–इस इतिहास की कृति का नाम रोमन एंटिक्विटीज (*Roman Antiquities*) है। यह एक वृहद् ग्रन्थ है जो 41 जिल्दों में पूरा किया गया है। प्रथम 25 जिल्दों में उसने मानवीय कार्य कलापों का वर्णन किया है, शेष 16 जिल्दों में दैवी कार्यों का उल्लेख हुआ है। इसकी इस कृति का रचनाकाल 47 ई० पू० माना जाता है और इसका जन्म 116 ई० पू०। वेरों की कृति की केवल देवी कार्यों से सम्बनधित जिल्दें ही उपलब्ध हैं।

जूलियस सीजर (100-44 ई० पू०)–इस सम्राट् ने तत्कालीन विश्व राष्ट्रों से सम्बन्धित अनेक संस्मरण लिखे थे। यह संस्मरण **द कमेण्ट्रीज ऑफ द गेलिक वार्स एण्ड द सिविल वार** नाम से प्रसिद्ध है। स्वाभाविक है कि उसने अपने समय की ऐतिहासिक घटनाओं की जीवन्त एवं प्रामाणिक वर्णन किया है।

साल्लुट (86-44 ई० पू०)–यह **थ्यूसीडाइडीज का शिष्य था। उसने 78 से 67 ई० पू०** के समय का रोम का इतिहास लिखा है। अपनी इस कृति में उसने कैटीलाहन के षड्यन्त्र और जूगरथाइन युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है और अपने समय के शक्तिशाली राजनीतिज्ञों के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला है। उसने रोम सम्राटों की वंशावलियों का उल्लेख नहीं किया है।

लिवी (59 ईसा पूर्व से 17 ईसवी)–यह इतिहासकार पेडुआ का निवासी थ, परन्तु उसका अधिकांश जीवन रोम में व्यतीत हुआ। **आगस्टस** उसका संरक्षक था। उसी की संरक्षकता में उसने कई रचनाएँ लिखीं तथा रोम का इतिहास भी लिखा। उसने रोमन साम्राज्य के उत्थान और पतन का विस्तार से वर्णन किया है।

टैक्टियस (सन् 54 से 120 ईसवी)–टैक्टियस ने प्राचीन गणतंत्रात्मक संस्थाओं की कार्य प्रणाली का वर्णन किया है। उसने *Annals* **(रोमन का प्रामाणिक इतिहास)** की रचना की जो आगस्टस की मृत्यु से 69 ईसवी तक की घटनाओं का विवरण है। इसमें फ्लेवियन सम्राटों का इतिहास प्राप्त होता है। **जर्मेनिया** उसका दूसरा ग्रन्थ है। यह समाजशास्त्र का प्रथम विवेचनात्मक ग्रन्थ माना जाता है। जर्मनी के प्रारम्भिक इतिहास की जानकारी भी इस ग्रन्थ से प्राप्त होती है।

ट्रान्क्यूलियस (75-160 ई०)–यह एक सरकारी उच्च अधिकारी था। अतः उसकी पहुँच सरकारी दस्तावेजों तक थी। उसने **लाइब्ज ऑफ सीजर** नामक कृति की रचना की। यह कृति **सीजर से नीरो** तक के सम्राटों के कार्यों का विशद चित्रण करती हैं यह कृति प्रामाणिक इस कारण मानी जाती है, क्योंकि इसका आधार सरकारी दस्तावेज है।

मैक्जीमस (165-230 ई०)–इस इतिहासकार ने **सूटोनियस से नेवां** और एलगाबुलस तक के सम्राटों के समय का इतिहास लिखा है।

मार्सीलिनस (300-400 ई०)–इस इतिहासकार ने रोमन सेवाओं में रहकर अनेक युद्धों में भाग लिया था। इसका ग्रन्थ (रेटम क्वेस्टारम लिवरी) **नेवां से लेकर वेलेन्स (96 ई०–378 ई.)** तक के समय का इतिहास है। यह ग्रन्थ अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है परन्तु जितना उपलब्ध है, उससे **एड्रियानोपुल** के युद्ध की पूरी जानकारी प्राप्त होती है।

रोमन इतिहास लेखन यूनानी इतिहासकारों के पदचिह्नों पर लिखा जाना शुरू हुआ था। रोमन इतिहासकारों ने एक प्रकार से यूनानी इतिहासकारों के दृष्टिकोण को ही परिष्कृत किया। वास्तविकता यह है कि रोमन संस्कृति भी यूनानी संस्कृति से पूरी तरह प्रभावित रही। रोमन साम्राज्य बहुत विशाल साम्राज्य था–अपने समय का संभवतः सबसे बड़ा साम्राज्य। सीरिया, इराक से लेकर समग्र यूरोप रोम सम्राटों के अधीन था। अतः जो राजनीतिक दृष्टिकोण और दर्शन इस काल में उदय हुआ, वही आगे चलकर यूरोपीय संस्कृति और राजनीति तथा न्याय की आधारशिला बना।

इसी संदर्भ में हमें ईसाई इतिहास दर्शन का भी संक्षिप्त उल्लेख कर देना उचित प्रतीत होता है, क्योंकि रोमन साम्राज्य के पतन के साथ ही ईसाई धर्म और संस्कृति का विस्तार हुआ। ईसाइयों ने यूनानियों के जीवन दर्शन में व्याप्त कारणवाद की उपेक्षा की और दैवीय अवधारणा को प्रमुखता दी। उन्होंने इतिहास को एक दैवीय योजना के रूप में माना। उन्होंने यह माना कि दैवीय योजना में मनुष्य को हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है। ईसाई जो कुछ हो रहा है, उसको ही अबाध गति से चलने देने में विश्वास करते थे। **जूलियस अफ्रीकन्स पहला** इतिहासकार था, जिसने ईसा से 5499 वर्ष के पूर्व इतिहास का विवरण प्रस्तुत किया और ईसा के जन्म के बाद 500 वर्ष तक का इतिहास भी लिखा। निश्चित रूप से यह उसकी कल्पना का इतिहास था लेकिन इसमें इतिहास काल के ऐसे तथ्य थे, जो यह प्रमाणित करते हैं कि उसने **मेनर्यो, वेरोवोस, अपोलोडोरस जोफेस तथा जस्टस** के ग्रन्थों से सहायता ली थी। **यूजीविलस** (260-340 ई०) ने **क्रानिकल** तथा **चर्च का इतिहास** नामक दो ग्रन्थ लिखे। चर्च का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि वह एक अन्वेषक इतिहासकार था। **आगस्टाइन** (350-450 ई०) का समय यूरोप में धार्मिक हलचल का युग था। उसने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया और उपने विख्यात ग्रन्थ 'सिटी ऑफ गॉड' की रचना की। उसने इस ग्रन्थ में यह प्रमाणित किया कि एक सत्ता ईश्वर की है, दूसरी **शैतानी** की है। दोनों में संघर्ष रहता है, और अन्त में ईश्वरीय सत्ता की विजय होती है। **आगस्टाइन** की रचना वेरो, सिसरो, लिवी आदि इतिहासकारों के ग्रन्थों पर आधारित है। इनके अतिरिक्त अन्य इतिहासकार भी हुए, परन्तु सभी की रचनाएँ धार्मिक अन्ध-विश्वास की कहानियाँ थीं। सभी ईसाई धर्म के काल्पनिक (अधिकांश भाग में) इतिहास की रचना कर रहे थे। यूरोप में इन्हें ईसाई धर्म के इतिहासकारों के रूप में मान्यता भी मिली।

यह विचारणीय बात है कि मानव इतिहास और कारणवाद के आधार पर लिखे गए इतिहास दर्शन का प्रवाह ईसाई धर्म के दैवीय पक्ष की ओर मुड़ गया। इसके विशिष्ट कारण अवश्य रहे होंगे। संभवतः ईसाई धर्म के प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से ऐसा किया गया। आम जनता को प्रभावित करने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन शायद धर्म ही था।

अथवा

इतिहास-लेखन परम्परा पर विचार करते हुए इतिहास पर इस्लाम के महत्त्व की विवेचना कीजिए। **(Keeping in view the history-writing tradition analyse the influence of Islam on History.)**

उत्तर–अरब कबीलों की घुमन्तू संस्कृति में उनको अपने एकल महत्त्व के प्रति बड़ी सजगता थी। ये युद्ध प्रिय, प्रतिहिंसा और प्रतिशोधात्मक प्रवृत्ति की जीवनचर्या के कारण अपनी एकता और अक्षुण्णता के प्रति बड़े सतर्क थे। यही कारण था कि उनके सामूहिक जीवन में वंशावली उनके कबीलियाई व्यक्तित्व की विशेष पहचान हुआ करती थी, जिसे कबीलों के कवि और चारण सुरक्षित बनाए रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते थे। अरब जगत की यह परम्परा उनके इतिहास की आधारशिला थी, जिसे **इमरूल कैस**, अम्र-बिन-कुलतूम, **अल-हारितः बिन-हिल्लिजा जुहैर, आमिर-बिन-अत्तफैल अन्ना विगह, अल-अक्ष** जैसे कवियों ने दृढ़ किया था। प्रत्यक्षतः अरब का वह युग हिंसा, संघर्ष और वैमनस्य के वातावरण का प्रतिनिधित्व करते हुए भी भाषात्मक और धार्मिक एकता के बंधन में किसी प्रकार बँधा हुआ था। मक्का के निकट उकाऊ का वार्षिक मेला उनकी इस एकता का प्रतीक था। मक्का उनका तीर्थ-स्थल था, जहाँ की तीर्थ यात्रा उनकी एकसूत्र ग्रन्थित संस्कृति की पहचान थी। तीर्थ यात्रा के अवसर पर उकाऊ में प्रतिवर्ष एक विशाल मेला होता था, जिसमें सब कबीलों के लोग आते थे और पारस्परिक बैर प्रतिकार या प्रति हिंसात्मक भावनाओं से ऊपर उठकर एकात्मक संस्कृति की पहचान बन जाते थे। इस अवसर पर अरब के विभिन्न प्रदेशों से अपने वाले कवि **साल मुअललकात** सुनाते थे, जिन्हें सभी लोग समझते थे। भाषा की दृष्टि से प्रायः सम्पूर्ण अरब कबीलों में कोई भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती थी। इससे ज्ञात होता है कि अरब की मूल संस्कृति की एक अपनी ही विशेषता थी, जो तत्कालीन यूरोपीय देशों की संस्कृति में भी दृष्टिगोचर नहीं होती थी। हालांकि ईसाई धर्म का विस्तार पूरे यूरोप के सभी प्रदेशों तथा देशों में पहुँच चुका था। अरब में मक्का की तरह ही येरूशलम को भी पवित्र नगर माना जाता था। विशेष बात

यह भी थी कि यहूदी पैगम्बरों की परम्परा जिस प्रकार ईसाई धर्म में मान्य थी, उसी प्रकार अरब में भी इसी परम्परा में **हजरत मुहम्मद** ने स्वयं को खुदा का नबी घोषित किया था। हजरत मुहम्मद ने भी ईसाई चर्च तथा यहूदी पूजाग्रह की तरह मदीना में मस्जिद बनवाई और प्रातः तथा सन्ध्याकालीन प्रार्थना के बीच में मध्याह्नकालीन प्रार्थना का विधान किया। मक्का से इस्लाम विरोध के कारण उन्हें मदीना आना पड़ा था, लेकिन अरब कबीलों की श्रद्धा का केन्द्र मक्का में स्थित काबा और उसमें पूजा जाने वाला 'हजद अक्सद' था। मुहम्मद साहब ने जब मस्जिद कायम की, तो प्रार्थना करते समय येरूशलम की ओर मुख करके प्रार्थना करने का आदेश दिया था। परन्तु बाद में उन्होंने यह समझ लिया कि अरबवासियों की श्रद्धा काबा से नहीं हटाई जा सकती। चाहे उन्होंने बुतपरस्ती और मूर्तियों की पूजा करने वाले पण्डे-पुजारियों का कितना ही विरोध किया। अंत में उन्होंने अरबवासियों की श्रद्धा के प्रति स्वयं को भी सन्नद्ध किया और येरूशलम के बजाय मक्का (काबा) की ओर मुँह करके नमाज अदा करने का नियम निर्धारित किया।

धर्म प्रचार के इस्लामी संगठन में जब उन्होंने युद्धक शक्ति देखी तो विधर्मियों से युद्ध करने आरम्भ किए। उन्होंने अपने शिविर से 74 आक्रमण किए। बाद के युद्ध में कुकैश, औस तथा खजराज अपनी-अपनी जातीय पताकाओं के साथ लड़े। अपनी मृत्यु शय्या पर मुहम्मद साहब ने **उसामबिन-जैद** को आदेश किया कि वह मुता के अरबों की बस्ती पर आक्रमण करे और उन्हें पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट कर दे। **इस प्रकार उन्होंने इस्लाम को अपने जीवन काल में एक संगठित युद्धक शक्ति का रूप दे दिया।** यह अरब की कबीलियाई संस्कृति का एक संगठित रूप था, जो इस्लाम के रूप में प्रकट हुआ था। इसमें अरबों की वंशपरक संकीर्णता और यहूदी-ईसाइयों की धार्मिक विस्तीर्णता का समावेश हो गया था।

इस्लामी जमइयत निरन्तर प्रगतिशील है। यह प्रगति शान्तिपूर्ण धर्म ग्रहण और हिंसापूर्ण संघर्ष दोनों ही साधनों द्वारा होती है। **जिहाद** इसका प्रभावशाली अस्त्र है। **तबलीग** इसका प्रधान उपकरण है, अतः मुहम्मद साहब के जीवन में ही इस्लाम का प्रसार बहुत हो गया था। उनकी मृत्यु के चार वर्ष पहले उनके एक सम्बन्धी ने चीनी सम्राट **लाई-त्सुङ्ग** की सभा में उपहार भेजकर अपना धर्म-केन्द्र स्थापित करने की अनुमति माँगी थी। इनकी मृत्यु के 9 वर्ष के भीतर 651 ई० में **मोनोफिजाइट नेस्तेदी** धर्मी का पूरा क्षेत्र इस्लाम की परिधि में आ गया। सन् 717 में इस्लाम कस्तुनतुनिया तक पहुँच गया। जहाँ उसका लक्ष्य यूनानी चर्च को चुनौती देना था। सन् 741 में चीन के शानतुङ्ग प्रान्त में मस्जिदें बन गई थीं, इसी वर्ष दक्षिणी फ्रांस के अरबों को दमिश्क से फिरंगियों के देश को जीतने का आदेश मिल गया था।

इस्लामी इतिहास दर्शन का प्रारम्भ भी कुरान से ही हुआ। जो मुहम्मद साहब पर उतरी खुदा की आयतों का संग्रह था। इसमें काल का प्रारम्भ, स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण, स्त्री-पुरुष की सृष्टि, भगवान की इच्छा के विरुद्ध आचरण करने के कारण दैवी दण्ड और परिणामस्वरूप कष्ट-यातना, पतन के युग का आगमन, पैगम्बरों के रूप में भगवत्संदेश का पुनः प्रतिपादन और फलस्वरूप समृद्धि, प्रसार, सुख और शान्ति की उपलब्धि का मार्गदर्शन था। कुरान में उन प्राचीन घटनाओं के बार-बार उल्लेख मिलते हैं, जो दीम और गो मोरहि के लोगों की कष्ट कथाएं थी, और ईश्वरीय आदेश का पालन न करने के कारण इजरायलियों के लिए विपत्ति बनी थी। इसमें मिस्रियों की भाग्यावस्था, आदि और तमूह के विध्वंस के कथानक नोह, मूसा, हूद, सालिह आदि के अवतरण की चर्चा कुरान में कई जगह मिलती है। इसमें सृष्टि के अन्त (महशर) तथा दैवी निर्णय (शुमार) के ज्वलन्त चित्र मिलते हैं। अरब दृष्टिकोण से कुरान में सृष्टि का समूचा इतिहास सुरक्षित है तथा अरब जातियों **अस विधाह** को सुरक्षित रखने वाली वंशावलियों की भावना भी इसमें सम्मिश्रित है।

खलीफा उमर के समय में जब मुहम्मद साहब के परिवारियों तथा सहचरों के वंशजों को वृत्तियाँ देने के लिए और मुस्लिम वीरों में युद्ध और लूट में मिली सामग्री बाँटने के लिए तालिकाएँ (दवाबीन) बनाई गई तो उन्हें प्राचीन वंशावलियों के आधार पर बनाया गया। इससे प्राचीन वंशों के इतिहास के अध्ययन को बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई। इस्लाम के प्रारम्भिक काल से ही **'दारुल इस्लाम'** की अवधारणा ने

जन्म लिया तथा जो प्रदेश या लोग इस्लाम के अनुयायी थे, उन्हें **दारुल-हर्व** अर्थात् युद्धक्षेत्र घोषित किया गया, जिनके विरुद्ध मुसलमानों को जिहाद (धर्म युद्ध) करके अर्थात् उन पर आक्रमण करके उन्हें इस्लाम का अनुयायी बनाने का आदेश दिया गया। निष्कर्ष यह है कि अरब इतिहास दर्शन का यही मूल प्रेरणा स्रोत था। दारु-उल इस्लाम के रूप में विश्व को मुसलमान बनाकर विश्व बन्धुत्व की धारणा का जन्म अरब इतिहास दर्शन की पृष्ठभूमि बना। ईसाई धर्म के विश्व बन्धुत्व का भी यही आधार था, परन्तु उसके 'धर्म-युद्ध' और इस्लाम की धर्म-युद्ध धारणा में अन्तर था।

कुरान शरीफ अपरिवर्तनीय है क्योंकि वह ईश्वरीय वचनों की किताब है। इसलिए उसकी टीकाओं का प्रचलन हुआ, साथ ही लोग मुहम्मद साहब और उनके साथियों द्वारा धार्मिक युद्धों में किए गए योगदान (वीर चरित्र) की गाथाओं को जानना चाहते थे, क्योंकि उनमें उनकी श्रद्धा का पारावार नहीं था। इसके अतिरिक्त 'दबावीन' (युद्धों में लूट का माल वितरण करने के निर्दिष्ट बनाई जाने वाली विशिष्ट व्यक्तियों की सूची) के लिए भी अरबों का वंशगत इतिहास जानना आवश्यक था। दिग्विजयों के कारण भी मुस्लिम जगत चकित था और वह सहसा समृद्ध हो गया था तथा उसके वीर उत्साह से भरे हुए थे। अतः इतिहास की चेतना जाग्रत हो गई थी। विजित देश भी अपनी सांस्कृतिक महानता से अरब जातीयता को नीचा दिखाने की चिन्ता में निमग्न थे। इससे इतिहास-लेखन को भारी प्रेरणा मिली। दक्षिणी अरब लेखक **आविद-इब्न-शरयह** ने **मुवाविया** के निमंत्रण पर दमिश्क जाकर अरब की जातियों तथा राजाओं का इतिहास लिखा। इसी समय एक फारसी यहूदी **बाहब-इब्न-मुन्बिह ने, जो इहम-अल-अवायल** (उत्पत्ति-विज्ञान) का माहिर था। 'अल-तीजान-फी-मूलक-हिमयार' नामक पुस्तक लिखी। इसी काल में **कल-अल-अहवर** नामक यमन के एक और यहूदी ने भी एक ग्रन्थ की रचना की। **यह उम्मैय्या खलीफाओं का राज्य काल था।**

अब्बासी खलीफाओं के समय में इतिहास-लेखन
(Composition of history during the period of Abbasi Khalifas)

धीरे-धीरे इतिहास बदलने लगा। शक्ति के अरब केन्द्र के प्रति खुरासानी मवालियों में प्रतिशोध की प्रतिक्रिया जन्म लेने लगी। यह लोग अरबवाद के विरुद्ध थे। अतः इनके आन्दोलन ने उम्माख्या वंश को समाप्त कर दिया। परिणामस्वरूप **अब्बासी खलीफाओं** का युग शुरू हुआ। दमिश्क के स्थान पर बगदाद राजधानी बन गया। यह बहुत पहले से ही एक महत्त्वपूर्ण नगर था, जहाँ सब देशों के लोग मिलते थे। वस्तुतः यह ऐसा नगर था जिसे उस काल का संस्कृति सम्मिलन का महान तीर्थ कहा जा सकता है। इससे भी इतिहास को एक नई प्रेरणा प्राप्त हुई। मदीने के **इब्न-इशाक** ने हजरत मुहम्मद का प्रसिद्ध जीवन-चरित्र 'सीरात रसूल-अल्लाह' लिखा। इनके पितामह पसार को **खालिद बिन वलीद** ने इराक में पकड़ कर ईसाई से मुसलमान बनाया था। इसी समय **मूसा-इब्न-उकवाह** (सन् 758) और अलवाकिदी (सन् 822-823) ने इस्लामी दिग्विजय (मगाजी) और पैगम्बर व उनके साथियों के इतिहास लिखे। उनके समकालीन **अबू-हनीफा-अहमद-इब्न-दाऊद-अल-दिनावरी** थे, जिन्होंने **'अल-अखबार-अल-तिवाल'** लिखा जो फारसी दृष्टिकोण से रचा गया विश्व इतिहास है।

नवीं सदी के उत्तरार्द्ध (सन् 870) में मिस्र के लेखक **इब्न-इब्द-अल-हकम ने फुतूह-मिस्र व अखबारूह** में मिस्र, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन की विजय का इतिहास लिखा और सन् 892 में फारस के लेखक **अहमद-इब्न-यला-अल-बलाजुरी ने फुतूह-अल बुलदानु"** और **"अन्साव-अल-अशराफ"** में विभिन्न नगरों और देशों की विजय के विकीर्ण वृतान्तों को एकत्र करके समन्वित किया। इसी क्रम में इतिहास-लेखन की शैली में विकास हुआ। सन् 889 में **मुहम्मद-इब्न-मुसलिम-अल-दिनावरी** द्वारा रचित **'किताब-अल-आरिफ'** में क्रमबद्ध इतिहास-लेखन का श्रेष्ठ निदर्शन हुआ है।

सन् 991 के लगभग **हममाह-अल-इस्फाहनी** ने 'तारीख-सिनि-मुतूक-अलअर्ज-बअल-अनाबिया' लिखा, जो ऐतिहासिक क्षेत्र में आलोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखा गया श्रेष्ठ ग्रन्थ है। सन् 872 में

1. **फारस के सांस्कृतिक उत्थान तथा फारसी इतिहास-लेखन परम्परा के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना कीजिए और बताइए कि इस परम्परा में मंगोल साम्राज्य का क्या योगदान था?**
(Analyse the respective relations in between the rising of Persian culture and her History-writing tradition, and point out the contribution of Mangol empire in this tradition.)

उत्तर–फारसी इतिहास-लेखन, इतिहास-लेखन की उस परम्परा का प्रारम्भिक काल था, जो चीनी इतिहास परम्परा के कुछ तत्त्वों के साथ-साथ पाश्चात्य इतिहास-लेखन परम्परा से भी प्रभावित मालूम होता है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि यूरोपीय इतिहास दर्शन को इस परम्परा ने ही ठोस आधार प्रदान किया।

इस्लाम द्वारा ईरान की विजय ईरानी इतिहास और संस्कृति के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। कहा जाता है कि अरबों द्वारा ईरान की विजय ने वहाँ का सांस्कृतिक पुनरुत्थान किया। यह एक अतिशयोक्ति ही है। ईरान में अपने साहित्य के प्रति पहले से ही प्रेम था और वहाँ साहित्य-सृजन होता था किन्तु इस्लाम के आधिपत्य ने ईरान के साहित्य-लेखन पर बहुत प्रभाव डाला, यह कहा जा सकता है। फारस देश की प्राचीन संस्कृति इस्लामी संस्कृति के साथ तेजी से समन्वित होने लगी। बुवई, सामानी, जिधारी वंश ईरानी थे। उनके राज्य काल में खुरासान, तबरिस्तान तथा दक्षिणी फारस संस्कृति के केन्द्र थे। **सुल्तान महमूद गजनवी** ने फारसी को बहुत महत्त्व प्रदान किया था। **फिरदौसी का शाहनामा** फारसी साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। निजामुल मुल्क (सन् 1017-1212) का **'सियासतनामा'** भी फारसी गद्य का उत्तम नमूना है।

मंगोल आक्रमण के बाद फारसी का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया था। वह इतिहास-लेखन का भी माध्यम बनी। मध्य एशिया से यूरोप और मिस्र तक अपना आतंक फैलाने वाली मंगोल जाति के प्रसिद्ध विजेता हलाकू ने 13 फरवरी 1258 ईसवी को बगदाद पर घेरा डाल दिया था। यह घेरा एक सप्ताह तक रहा जिसमें 8 लाख निवासी मौत के घाट उतारे गए। कला, संस्कृति और साहित्य के विपुल भण्डार नगर के साथ जला दिए गए। **खलीफा-अस मुसलतीम बिल्ला** को एक दरी में लपेटकर डण्डो से पीट-पीट कर मार दिया गया। उस सयम तक मुस्लिम मान्यता थी कि इस्लाम अजेय है, परन्तु हलाकू ने इस भ्रम को तोड़ दिया। मुस्लिम साम्राज्य में एक भयानक आतंक छा गया। **फलमुद्दीन मुहम्मद बिन एदीमीर** ने मंगोल विजय का वृत्तांत अपने मित्रों को इस प्रकार सुनाया था–**"अरबी घोड़ों पर चढ़े हुए कवचधारी प्रशिक्षित सैनिक गधों जैसे टट्टुओं पर चढ़े हुए और तकली जैसे भाले घुमाते हुए वस्त्र-कवचहीन मंगोलों के सामने परास्त होकर क्षणभर में काल कवलित हो गए।"**

(*"The soldiers trained, equipped with shield and rode on Arabi horses were be headed within seconds owing to their defeat by Mangols without clothes and shields, rode on donkey like ponies and equipped with speers like spindles."*)

इसे सुनकर उसके मित्र आश्चर्य चकित हो उठे थे। इस वृत्तान्त को **जलालुद्दीन अबू जाफर मुहम्मद बिन ताजिद्दीन हसन अली इबन-अल-तिकतिया** ने अपनी पुस्तक **'फितावुल-फखरी'** में उद्धृत किया है। इस लेखक और इसके समाज के सामने यह प्रश्न था कि इस्लामी खिलाफत जो सिरदाया और कॉकेशस से एटलाण्टिक, अरब और हिन्द महासागर तक के विशाल प्रदेश का आधिपत्य लिए हुए थी, कैसे असभ्य, बर्बर मंगोलों के हाथों नष्ट-भ्रष्ट हो गई। इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने सन् 622 से सन् 1258 तक इस्लाम का संपूर्ण इतिहास लिखा, जिसमें यह दिखाया गया कि इस्लाम के उस काल में कितना ओज और तेज था।

मंगोल शासन काल में **अलाउद्दीन अता-मलिक जुबैनी** (सन् 1226–1283) और **फजुल्लाह रशीदुद्दीन तबीब अबुल खैर हमदानी** (सन् 1247–1318) ने मंगोलों का इतिहास लिखा। जुबैनी के पितामह और पिता ख्वारज्य राज्य में प्रधानमंत्री थे, उनका भाई **शमसुद्दीन हलाकू** और उसके दो परवर्ती खानों के समक्ष साहिबे दीवान था। वे हलाकू के साथ पश्चिमी ईरान में इसमाइलियों के युद्धों में रहे तथा ईराक में अरबों का विनाश भी उनके सामने हुआ। सन् 1259 में हलाकू ने उन्हें बगदाद का गवर्नर नियुक्त किया था। बुखारा के विध्वंस का वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया–**"वे आए, उन्होंने उखाड़ा, जलाया, कत्ल किया और वे चले गए।"**

("They came, they uprooted, burnt, massacred and returned.")

जुबैनी ने अपनी **तारीखे-जहाँगुशा** में मंगोल इतिहास को ईरान और ईराक की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया। इसमें चार भाग हैं, जिनमें से पहले में **चिंगिस खाँ** तक का मंगोलों का इतिहास है। तीसरे भाग में **अलामूत** के इसमाइलियों की तथा उनके विनाश की कथा है।

रशीदुद्दीन (फजलुल्लाह रशीउद्दीन तबीब अबुलखैर) भी मंगोल राज्य में एक उच्च पदाधिकारी थे। वह मंगोल शासक **अबाकाखाँ** (सन् 1265-82), **गाजान खाँ** (सन् 1295-1304), **उलजैतु खुदाबन्दा** (सन् 1305-1316) के राज्य काल में महामन्त्री रहे। **गाजान खाँ** के कहने पर उन्होंने तुर्कों और मंगोलों का इतिहास 'तारीखे-गाजानी' लिखा। **उलजैतु** के आदेश पर विश्व का इतिहास 'जामी-उल-तवारीख' लिखा। इस इतिहास के चार भाग हैं–पहले तीन भागों में ईरानी और अरब जगत का इतिहास है, चौथे में तुर्क, चीनी, यहूदी, फिरंगी और हिन्दू जगत का इतिहास है। इतिहास का विश्वव्यापी दृष्टिकोण सबसे पहले इस लेखक की कृति में दृष्टिगोचर होता है।

मंगोल कालीन ईरान संस्कृतियों का संगम बन गया था। वहाँ चीनी, कश्मीरी, हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, यहूदी, फिरंगी आदि लोग कई देशों से आकर बस गए थे। इनका सम्मेलन और सम्मिश्रण मंगोलों के राज्यकाल में ही हुआ।

सन् 1272 में **कुबलाई खाँ** ने चीन में फानचिङ्ग के घेरे के समक्ष दो फारसी इन्जीनियरों–अलाउद्दीन और इस्माइल से काम लिया था। इसी प्रकार **हलाकू** ने सन् 1251 में फारस और बगदाद के युद्धों में एक हजार चीनी इन्जीनियरों से तोपखाने और गुलेलें चलाने का काम लिया था।

कश्मीर में मंगोलों ने एक आक्रमण तो **उगुदायी खाँ** के जमाने में **उबुतू-नोयोन** के नेतृत्व में किया और दूसरा **मंगू खाँ** के युग में **साजोनोपान** और **तकूदार** के नेतृत्व में किया। **राजदेव, राय देव, सिंह देव** व **सहदेव** आदि के काल में कश्मीर पर मंगोलों का आधिपत्य था। अतः वहाँ के बौद्ध ईरान में आ बसे थे। **इन बौद्धों के प्रभाव से हलाकू ने स्वयं बौद्ध शासन में दीक्षा ली थी।** संभवतः यह उस राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का ही प्रभाव था कि **रशीदुद्दीन** ने सबसे पहले विश्व-इतिहास की रचना की। उनकी दृष्टि में एशिया के रंगमंच पर मंगोलों का अवतरण ऐसी ही घटना थी जैसी सातवीं शताब्दी में इस्लाम का आगमन। **रशीदुद्दीन** ने लिखा है–**"प्रत्येक नए धर्म या राज्य का आविर्भाव एक विशिष्ट युग के आगमन का सूचक होता है। अतः चिंगिसखाँ के वंश के अभ्युदय से अधिक महत्त्वपूर्ण और स्मरणीय और कौन-सा तथ्य या घटना हो सकती है, जिसे नवीन युग का सूचक चिह्न समझा जा सके।"**

("Emergence of every new religion or kingdom indicates arrival of a distinct age. What fact or event may become more important and memorable then the emergence of the Chingis Khans' dynasty which is worth thinking an indication of new era.")

वस्तुतः इस सम्राट ने थोड़े से वर्षों के भीतर संसार के बहुत से राज्यों को जीत लिया। दुर्दम्य जातियों की एक बड़ी संख्या को परास्त व ध्वस्त कर दिया। जब **चिंगिस खाँ**, उसके अभिजात वंशजों और महान संतान को चक्रवर्ती साम्राज्य प्राप्त हुआ तो विश्व के सब देश और प्राचीन (दक्षिणी चीन), खिताई (उत्तरी चीन), हिन्द और सिन्द, मुगलिस्तान, तुर्किस्तान, रूम, आस (अलैन), रूस, सिखास, किपचक, कलार, वशकीर, एक शब्द में चारों दिशाओं के सब देश उसकी आज्ञा के अधीन हो गए। चिंगिस खाँ ने संसार को एक समान रूप देकर सबके हृदय में समानता का भाव भर दिया।

अब चूँकि विश्व के एक छोर से दूसरे छोर या तो हमारे या चिंगिस खाँ के अन्य वंशजों के अधीन हैं, अतः परिणामस्वरूप सब धर्मों और सम्प्रदायों (अदयान और मिलेल) के दार्शनिक, ज्योतिषी, विद्वान् और इतिहासकार (हुकमा व मुनज्जिमान व अरबावे-दानिश व असहावे-तवारीख) जो खिताई, प्राचीन हिन्द, कश्मीर, तिब्बत, युदूगुर व अन्य जातियों जैसे तुर्क, अरब, फिरंगी से सम्बन्धित हैं, बहुत बड़ी संख्या में हमारे नेत्रों के सामने हैं और प्रत्येक के पास ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें देशों का इतिहास, कालक्रम और धार्मिक विचार लिपिबद्ध हैं और वे इन विषयों से परिचय भी रखते हैं।

अतः इस इतिहासकार ने मुस्लिम तटस्थता और स्वाभिमान के भाव को दूर करके अन्य जातियों की प्रामाणिक परम्पराओं को स्वीकार करते हुए एक महान विश्व इतिहास की रचना की। **रशीदुद्दीन के बाद भी नासिरुद्दीन-अल-बैरवी, अबू सुलैमान-दाऊद अलबानकदी** और **मिनहाज-अल-सिराज** ने इस परम्परा को आंशिक रूप से जीवित रखा।

ईसाई धर्म युद्धों (क्रूसेडों) ने भी इस्लामी इतिहास-लेखन का क्षेत्र विस्तृत किया। **सिब्त-इब्न-अल-जोजी** (सन् 1186-1257), अलेप्पो निवासी बहाउद्दीन (सन् 1143-1234) जो सलादीन तुर्क के जीवन चरित्रकार थे, **उसाम-इब्न-मुनकीज** (सन् 1095-1188) और अबू शाम (1203-1268 ई०) आदि इतिहासकारों ने फिरंगियों और मुसलमानों के सामरिक और सांस्कृतिक संबंधों पर यथेष्ट प्रकाश डाला।

इब्न खल्दून ने समाजों को स्थायी और घुमन्तू समाजों में विभाजित किया है। उसके अनुसार घुमन्तू जीवन के बाद स्थायी जीवन आरम्भ होता है। घुमन्तू समाज की अवधि चार पीढ़ी तक होती है अर्थात् 160 वर्ष। चार पीढ़ियों का वह 40 वर्ष के औसत से जीवनमान प्रदान करता है। जब घुमन्तू समाज स्थायी समाज के रूप में परिवर्तित हो जाता है तो साम्राज्यों का प्रसरण होता है। संस्कृति और सम्पन्नता की अभिवृद्धि इसकी निजी विशेषता है। असविया का क्षरण होने से राज्य में नीतिबल का प्रयोग होता है, जिससे प्रभुत्व का जन्म होता है। इस समाज के जीवनावधि तीन पीढ़ियाँ (प्रत्येक 40 वर्ष अर्थात् 120 वर्ष) होती है। पहली पीढ़ी में बर्बरता और कर्कशता विद्यमान रहती है। यह युग युद्ध, हिंसा, लूटमार और विजय दुंदुभियों के घोष का होता है। दूसरी पीढ़ी में शासक वर्ग विजित जातियों के आचार-विचार ग्रहण कर लेते हैं और उनमें सौजन्यता व शिष्टता आ जाती है। शासन एक विशेष दल की बपौती बन जाता है। तीसरी पीढ़ी में घुमन्तू जीवन के सब तथ्य लुप्त हो जाते हैं। लोग नागरिक जीवन के ऐश्वर्य और भव्यता में डूब जाते हैं। यह पतन और विघटन का युग होता है। इन तीन पीढ़ियों का काल इब्न खल्दून ने पाँच भागों में विभक्त किया है। पाँचवें स्तर पर आकर राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

इब्न खल्दून का यह दर्शन सत्रहवीं शताब्दी तक के इतिहास पर निश्चय ही लागू होता है। यह काल घुमन्तू सभ्यता द्वारा राज्यों के संस्थापन तथा उनके नष्ट होने का युग था। इस काल में एशिया में 31 साम्राज्य उदय हुए और अस्त हुए, जिनके उदय-अस्त की काल सीमा लगभग यही थी। इब्न खल्दून का इतिहास दर्शन अवश्य ही एक बहु-आयामी गम्भीर वैचारिकता का परिणाम है, जिसका प्रभाव चाहे अब यूरोपीय इतिहास दर्शन पर पड़ा था। उनके सिद्धान्तों का पश्चिमी विचारकों ने समुचित आंकलन भी किया।

फारसी इतिहास-लेखन इस्लाम के प्रभावी प्रसार का परिणाम नहीं था। वह मंगोलों द्वारा ईरान विजय का परिणाम था। कुबलई खाँ मंगोल ने सन् 1252 में चीन की ओर प्रस्थान किया था और वहाँ मंगोल वंश की स्थापना की, जो **मुबारक-वंश** कहलाता था। सन् 1294 में कुबलई खाँ की मृत्यु हुई। सन् 1256 में हलाकू ने ईरान में मंगोल साम्राज्य की नींव रखी। यही वह समय था जब भारत में गुलाम वंश की नींव

पड़ चुकी थी। जब मंगोल ईरान और तुर्किस्तान पर आक्रमण कर रहे थे, भारत में इल्तुतमिश शासन कर रहा था और वह स्वयं भी मंगोलों से बहुत भयभीत था। मंगोल साम्राज्य में समस्त इस्लामिक क्षेत्र आ गया और उसने खिलाफत समाप्त कर दी। प्रारम्भ में मंगोल ईरानियों अर्थात् इस्लाम से अलग-थलग बने रहे, लेकिन सन् 1334 तक अर्थात् अबू सईद की मृत्यु तक मंगोल शासक वर्ग ईरानी मुस्लिम जनता में विलीन हो गया, वह फारसी संस्कृति में विलीन हो गया। **गैखातू** के समय में सद्रेजहाँ अहमद-अल-खालीदी ने मंगोलों का दमन और निष्कासन आरम्भ किया। **गाजान** ने इस्लाम स्वीकार करके ईरानी संस्कृति को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया। लेकिन यह काल फारसी साहित्य के उद्भव का महत्त्वपूर्ण समय था, क्योंकि मंगोलों के समय में बगदाद ने अपने अतीत के भव्य रूप से भी कहीं अधिक भव्यता प्राप्त कर ली थी। मंगोल शासन किसी धर्म विशेष का शासन न होने के कारण उस समय की लगभग सभी संस्कृतियों के मेल-मिलाप तथा सम्मिश्रण का आधार बन गया था। उस काल में बहुत से फारसी इतिहासकारों ने जन्म लिया था। मंगोलों द्वारा अपने साथ लाई गई चीनी इतिहास परम्परा का भी इस काल के मुस्लिम इतिहास लेखन पर प्रभाव पड़ा। **अल-मसूदी** ने मुल्क और दीन के सम्बन्धों पर यथेष्ठ प्रकाश डाला था। अल-तरतूशी अल-पावर्दी, इब्न-अल मुजफ्फा ने सामाजिक विकास पर विचार किया था। किन्तु ये लेखक या तो शरियत के आदर्श को साथ लेकर चलते थे या एक काल्पनिक, चित्र सामने रखकर राज्य की समस्या पर विचार करते थे। **इब्न खल्दून** के बाद मुस्लिम जगत में किसी अन्य लेखक ने इतिहास दर्शन या समाजशास्त्र पर इतनी गम्भीरता से विचार नहीं किया। उसका कुछ प्रभाव **अल-मकदीजी** की कृतियों में मिलता है। इसके अतिरिक्त इस काल के दूसरे श्रेष्ठ लेखक थे–अबुलफिदा इब्न-अल-असीर। अबु-अल-महासिन-इब्न-तर्गी-विर्दी (1411-1469 ई०) ने अल-नुजूम-अल-जाहिरा-फ्री-मुलूक मिस्र वल काहिरा में अरब विजय (1453 ई०) तक का इतिहास लिखा है। जलालुद्दीन-इबन-सुयूती (सन् 1445-1505) ने भी 'हुस्न-अल-मुहाजराह-फी-अखबार-मिस्र-वल काहिरा में मिस्र का इतिहास लिखा। **अब्दुर्रहमान अल-जवर्ती,** बाद के इतिहासकारों में उल्लेखनीय है। वे अल-अजहर विश्वविद्यालय में ज्योतिष के प्राध्यापक थे और नेपोलियन ने उन्हें अपनी राज्यसभा का सदस्य नियुक्त किया था। उन्होंने फिरंगियों की न्यायप्रियता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इसी समय मिस्र में मुहम्मद अली ने पश्चिमी ढंग की राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित करके इस देश को नवीन रूप दिया, फिर भी अल-जवर्ती मध्यकालीन धार्मिकता में डूबे हुए थे।

इब्न खल्दून यों तो इतिहास दर्शन के विचारकों की प्रथम पंक्ति में माने जाते हैं, परन्तु मानव इतिहास पर विचार करने का उनका दृष्टिकोण दारुल इस्लाम ही है। उनका विचार था कि असविया केवल घुमन्तू लोगों में ही सम्भव है और उसी के द्वारा साम्राज्य निर्माण होते हैं। यह मत स्थायी समाजों के विषय में उनके अज्ञान का सूचक है। यह ठीक है कि उन्होंने प्रथम फारसियों (अरबवासियों), असुरों नवातियों (बावुत के राजाओं), तुब्बा (दक्षिणी अरब के राज्य), यहूदियों, मिस्रियों, दूसरे फारसियों (सासानियों), रोमनों, अरबों, (घस्सान, हीरा और यमन के अरब राज्य) और फिरंगियों का उल्लेख किया है, किन्तु वे उनके इतिहास की प्रक्रिया से पूर्णतः अपरिचित ही रहे। उनके सामने स्थायी समाज के जो भी निदर्शन थे, वे रोमन और सासानी साम्राज्यों की वह करदात्री जनता थी, जिसे अरब आक्रमणकारियों ने लूट-खसोट कर कंगाल कर दिया था। उन्हें चिक, हान्, थाङ्ग, शुङ्ग, मिङ्ग आदि चीनी राजवंशों के इतिहास का पता नहीं था और मौर्य, शुङ्ग, गुप्त, मौखरी, पुष्यभूति, प्रतिहार, राष्ट्रकूट आदि भारतीय राजवंशों का ही ज्ञान था।

है। आधुनिक समालोचक भी जयानक के इतिहास-दर्शन की शत-प्रतिशत निन्दा करते, अपितु उनको भी एक परम्परागत इतिहासकार के रूप में ही स्वीकार करते हैं। यह मान्यता सर्वथा उचित भी कही जा सकती है।

□

---

6. कल्हण का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
(Give a brief introduction of Kalhan.)

उत्तर–कल्हण–कल्हण के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु समकालीन उपलब्ध स्रोतों के आधार पर विद्वानों ने यह लिखा है कि कल्हण एक कश्मीरी ब्राह्मण थे तथा भार्गव कुल की सारस्वत शाखा से सम्बद्ध थे। **स्टीन महोदय** के अनुसार उनके पिता चणपक (कंपक) राजा हर्ष के यहाँ मन्त्री थे, हर्ष की मृत्यु के बाद वे अपने पद-भार से स्वतः पृथक् हो गए थे और स्वयं भी 1135 ई० तक जीवित रह सके थे।

कल्हण की प्रसिद्धि उनकी पुस्तक **'राजतरंगिणी'** से है। कल्हण ने इसे 1148 ई० में लिखना आरम्भ किया और लगभग दो वर्षों में (संध्याकर नन्दी की पुस्तक पूरी होने के कुछ पहले ही) पूरा कर लिया। **बार्डर** ने इसे भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध इतिहास कहा है। इस ग्रन्थ में कश्मीर का इतिहास है, किन्तु इसमें किसी एक अथवा विशेष राजवंश का उल्लेख नहीं है, अपितु अनेक राजवंशों का वर्णन हुआ है। इसमें प्रायः 8000 संस्कृत छन्द और 8 तरंग (सर्ग) हैं। इसका प्रामाणिक संस्करण, अनुवाद **आरेल स्टीन** द्वारा किया गया है। इस ग्रन्थ को 3 भागों में बाँटा जा सकता है–

प्रथम भाग में 1 से 3 तरंग (सर्ग) रख सकते हैं। इसमें हम देखते हैं कि कल्हण ने समसामयिक परम्पराओं के आलोक में अतीत की घटनाओं का उल्लेख किया है।

द्वितीय भाग में 4 से 6 तरंग के अन्तर्गत कारकोरा (कार्कोट) तथा उत्पल राजवंशों का इतिहास है, जिसमें उन्होंने अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों तथा समकालीन इतिहासकारों के स्रोतों से सामग्री का उपयोग किया है।

तृतीय भाग में 7वें–8वें तरंग के अन्तर्गत कश्मीर के दो लोहर राजवंशों का इतिहास वर्णित है, जिसे अपने व्यक्तिगत ज्ञान एवं प्रत्यक्ष दर्शन से संगृहीत साक्ष्यों के आधार पर दिया गया है तथा कतिपय तथ्यों को उन्होंने स्रोतों से संगृहीत तथ्यों से पूर्ण किया है।

राजतरंगिणी की विषय-वस्तु सम्यक् है। उसमें कश्मीर की उत्पत्ति पौराणिक मनु वैवस्वत की परम्परानुसार वर्णित है। पौराणिक शासकों के अनन्तर मातृगुप्त एवं विक्रमादित्य द्वितीय, कुषाण, हूण, मौर्य, अशोक, कार्कोट शासन आदि का उसमें पूरा इतिहास वर्णित है। इसी आधार पर कुछ विद्वान् उनको प्राचीन भारतीय इतिहासकार मानते हैं परन्तु, उनकी कवि-प्रतिभा और उनके साक्ष्यों में पौराणिकता का अवलोकन करने पर कुछ लोगों का कहना है कि वह केवल कवि ही थे, कभी भी उनको इतिहासकार नहीं कहा जा सकता। इसके लिए हमें उनके इतिहास-दर्शन को समझाना होगा और हम यह समझ पाएंगे कि वे कवि थे अथवा इतिहासकार।

कल्हण का इतिहास-दर्शन (Views of Kalhan on History)

भारत में इतिहास-लेखन परम्परा के विकास के सन्दर्भ में पूर्व मध्यकाल के मिलन-बिन्दु को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है, जबकि देश के विभिन्न भागों में स्थानीय परम्पराओं का समावेश लेखकों की विशिष्ट कृतियों में हुआ था। इनमें कश्मीर, नेपाल, आसाम एवं गुजरात की इतिहास लेखन-शैलियाँ विशेष उल्लिखित की जाती हैं, जिन पर पूर्ववर्ती गाथा, नाराशंसी आख्यान, इतिहास, पुराण का प्रभाव अवश्य है, तथापि समग्र रूप में पुरातन शैली की अपेक्षा इनके नवीन दृष्टिकोण के प्रति सन्देह नहीं किया जा सकता। इन नवीन परम्पराओं एवं मान्यताओं का मधुमय निदर्शन कश्मीरी कवि कल्हण की शैली है, जिसका निर्वहन राजतरंगिणी में हुआ है।

राजतरंगिणी के अनुशीलन से पता चलता है कि कल्हण ने इस ग्रन्थ के लेखन में अपने पूर्वापर एवं समकालीन स्रोतों–चिट्ठियों, शासनादेशों, अभिलेखों, मुद्राओं, प्राचीन स्मारकों तथा राजकीय अभिलेखागारों में सुरक्षित राजावलियों एवं वंशावलियों का उपयोग किया है। कल्हण ने इन स्रोतों का उल्लेख अपने ग्रन्थ के आरम्भ के श्लोकों में किया है। कुछ स्रोतों की वे आलोचना भी करते हैं। यथा–सुव्रत, क्षेमेन्द्र की क्रोनोकिल। **डॉ० वाशम** के अनुसार, कल्हण ने अपने पूर्ववती 11 इतिहासकारों एवं नीलमत पुराण का उपयोग किया हैं। उन्होंने तथ्यों के संग्रह और तिथिक्रमों को ही विवरण का आधार नहीं बनाया, अपितु मन्दिरों और मठों में रखे गए संलेखों, अभिलेखों तथा प्रशस्तियों का भी उपयोग किया है। प्राचीन मुद्राओं, मौखिक-लिखित तत्कालीन हिन्दू जीवन में प्रचलित तीन परम्पराओं (यथा–ललितादित्य की मृत्यु 769 ई० से सम्बद्ध परम्परा तथा यशस्कर की मृत्यु सम्बन्धी परम्परा आदि) को भी आधार बनाया है, किन्तु अपनी ओर से किसी को भी सही नहीं माना है, अपितु यह लिखा है 'जब बड़ों की मृत्यु होती है तो उनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कहानियाँ लोक-जीवन में प्रचलित हो जाती हैं। कल्हण ने किसी भी परम्परा को प्रचलन के रूप में स्वीकार नहीं किया, अपितु उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपना विवेचन भी दिया और इस तरह आधुनिक इतिहास-लेखनविधाओं को स्वीकारते हुए दिखलाई देते हैं। इसी आधार पर राजतरंगिणी को भारत का सर्वाधिक प्रसिद्ध इतिहास स्वीकार किया गया है और कल्हण के विषय में भी कहा गया है कि प्राचीन भारत में सबसे अच्छा इतिहास उन्होंने ही लिखा है। वस्तुतः वे आधुनिक इतिहास-लेखन कला से भी परिचित थे।

कल्हण का ध्येय आदिकाल की दन्तकथाओं से आरम्भ करके अपने समय तक, कश्मीर का एक विस्तृत इतिहास लिखने का था। इसमें उसने इतिहास की प्राचीन परम्पराओं का पालन तो किया, किन्तु उत्तरकालीन महाकाव्य के कलापरक अनुरोधों की तरफ विल्हण आदि लेखकों की अपेक्षा बहुत ही कम ध्यान दिया। उनका लक्ष्य साहित्यिक सौन्दर्य तथा ऐतिहासिक सत्य का समन्वय करना है। साहित्यिक सौन्दर्य के सिद्धान्त के लिए वे शान्त रस में महाभारत का प्रमाण विशेषतः प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने दरबारी संस्कृत श्लोकों के लेखन में मधुर प्राञ्जल भाषा का प्रयोग करते हुए घटनाओं का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन किया है और प्रत्येक राजा के राज्यारोहण की तिथियों को दूसरे और तीसरे भाग में दिया भी है, परन्तु वे सभी घटनाओं की तिथि नहीं दे पाए हैं, जिससे एक इतिहासकार के रूप में उनको स्वीकार

कल्हण ने कवि को ही इतिहासकार माना है और अपने को भी वैसा ही बतलाया है। इतिहास के विषय में उनकी मान्यता थी कि **"इतिहास से अधिकाधिक व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त हो सकती है; क्योंकि प्राचीन शासनकालों के ऐतिहासिक अध्ययन से भविष्य के राजाओं के भाग्यों तथा दुर्भाग्यों को देखने की अधिक शक्तिशाली दूर-दृष्टि प्राप्त होती है।"**

(*Kalhan—"As the study on the history of ancient ruling periods gives more foresight to estimate the progress and misfortunes of future kings, the history can impart more behavioral education."*)

राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किए जाने का कारण बतलाते हुए **वाशम** लिखते हैं कि सम्भवतः उनके पास सम्बद्ध सत्य (साक्ष्य) कम मात्रा में रहे होंगे और दूसरी बात यह रही होगी कि वह विशेषतया नैतिक शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य मुख्य रूप से रखे रहे होंगे। किन्तु, मातृभूमि कश्मीर के प्रति उनकी जो राष्ट्रीय भावना दिखलायी देती है, वह उनको एक राष्ट्रवादी इतिहासकार की श्रेणी में अवश्य ला देती है। फिर भी उन्होंने अपने इतिहास-लेखन में कहीं भी पक्षपात नहीं किया है। घटनाओं को सत्य एवं निरपेक्ष रूप में प्रस्तुत किया है। इसे हम जयसिंह-प्रकरण में देख सकते हैं जहाँ कल्हण ने उनके उत्तम गुण की प्रशंसा के साथ-साथ दुर्गुणों की निन्दा भी की है।

कल्हण ने अमानवीय शक्तियों में विश्वास करते हुए भी कर्म से सिद्धान्त को अधिक मान्यता दी है। उनके अनुसार, कर्म मौलिक-नैतिक समर्थन प्रदान करता है, किन्तु दुष्कर्मों का दण्ड इस या उस जन्म में भुगतना ही होता है। वह भाग्य को ईश्वर मानते थे। किन्तु आत्मिक विश्वास और शक्ति को भी स्वीकारते थे। उनकी दृष्टि में राजा दैवी नहीं, अपितु प्रजा का पिता होता है।

राजाओं के वर्णन के आधार पर यदि हम कल्हण की समीक्षा करें तो यही पाएंगे कि उनकी भावना यही थी कि ग्रन्थ में अधिकाधिक राजाओं का परिचय करा दें। उन्होंने मातृगुप्त से आरम्भ किया है, जो ऐतिहासिक सत्य है, क्योंकि एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में कश्मीर का इतिहास वहीं से आरम्भ होता है। कालगणना में उसने पौराणिक कालगणना को अपनाया है जिससे उसमें अशुद्धियाँ मिल सकती हैं। किन्तु, उसने जिन अभिलेखों का सहारा लेकर ग्रन्थ-रचना की है वे विश्वसनीय साक्ष्य हैं जिनके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि कल्हण का ऐतिहासिक दृष्टिकोण विश्वसनीय साक्ष्यों से परिपुष्ट था। यों उसने एक प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार की भूमिका का निर्वाह भी किया है। उसकी रचना में जनश्रुति एवं स्मृति में सुरक्षित अतीतकालीन राजनीतिक घटनाओं का भी समावेश हुआ है, यथा-हर्ष का उल्लेख, जिसका आविर्भाव कई शताब्दियों पहले हुआ था, किन्तु जिसकी स्मृति न्यूनाधिक रूप में जनमानस में सुरक्षित थी।

कल्हण के इतिहास-दर्शन की समीक्षा करने पर हम पाते हैं कि उन पर पौराणिक परम्परा का प्रभाव था। उन्होंने जलाशय में मग्न पृथ्वी का उद्धार कर उसे कश्मीर के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसके इतिहास का सूत्रपात प्रजापति कश्यप से किया है। दूसरी बात यह है कि उसने ईश्वर और भाग्य को भी स्वीकार किया, आत्मबल और कर्म को भी माना, साथ ही कर्मफल को भी। इन सभी आधारों पर विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि इनकी रचना एक ओर तो जन मनोरंजन के लिए उपादेय प्रतीत होती है, किन्तु दूसरी ओर ऐतिहासिकता की दृष्टि से इसकी उपादेयता बाधित बन बैठती है। उदाहरणार्थ–कश्मीर के किसी राणादित्य नामक शासक के विषय में उनका कथन है कि अपने आदेशमात्र से उसने कपित्थ फल प्राप्त किया। मेधवाहन नरेश के विषय में वे कहते हैं कि वरूण देवता की कृपा से उसने श्रीलंका पर विजय प्राप्त की थी। वरूण ने समुद्र के जल को ऐसा स्थलरूप प्रदान किया कि कश्मीर की सेना ने समुद्र को पैदल पार कर श्रीलंका में प्रवेश किया था।

उपर्युक्त अनेक समीक्षित कमियों के रहते हुए भी कल्हण की लेखन-शैली में एक ऐसी इतिहास-लेखन की अभिनव धारा का प्रमाण मिलता है जो अनेक दृष्टियों से इतिहास की आधुनिक परिभाषा के समीप है तथा जिसे गुणदोषविवेकज्ञ थ्यूसीडाइडीज, पालिबियस अथवा हेरोडोटस जैसे यूनानी इतिहासकारों के सन्निकर्ष में रखना आपतिजनक प्रतीत नहीं होता। इसी भावना से आज प्रायः अधिकांश लोग कल्हण को एक प्राचीन भारतीय इतिहास लेखक के रूप में स्वीकार करते हैं।

2. इतिहास के राजनीतिक विज्ञान के साथ संबंध की विवेचना कीजिए। (Discuss the relationship of History with Political Science.)

उत्तर–इतिहास और राजनीति विज्ञान (History and Political Science)–इतिहास का राजनीतिक विज्ञान से सम्बन्ध पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष और किसी भी संदिग्धावस्था से परे है। यहाँ तक कि प्रारम्भिक रूप में इतिहास को ही राजनीतिशास्त्र माना जाता था या यों कहो कि इनकी अभिन्नता ऐसी समझी जाती थी कि जैसे राजनीतिक विज्ञान इतिहास में संश्लिष्ट हो। इतिहास का जन्म, जैसा कि आज माना जाता है कि वह सामाजिक प्रक्रियाओं और व्यवहार की घटनाओं का क्रमिक स्वरूप है, के आधार पर नहीं हुआ था। इतिहास को उसके स्थूल रूप में तो अतीत की घटनाओं का विवरण ही माना जाता है। सम्भवतः अतीत को स्वाभाविक रूप में स्मरण करने के स्वभाव ने ही इतिहास को जन्म दिया था। अवश्य ही उसका उद्देश्य तब केवल अपने सांस्कृतिक गौरव को स्मरण करते रहने का ही था, जो सामान्य समाज में कहानियों के रूप में कहा-सुना जाता था। इतिहास के आधुनिक विज्ञानवादी सिद्धान्त में भी अतीत की उपेक्षा नहीं की जा सकी है। यह बात दूसरी है कि अतीत को आज इतिहास आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समझने की बात करता है, परन्तु यह बात अपनी जगह आधुनिक इतिहासकारों की सैद्धान्तिक घोषणा है क्योंकि वह जो कुछ आज की सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा संस्कृति की धारा में देखते हैं, यदि उसे आज के सामाजिक परिवेश में उचित नहीं मानते तो इसके लिए वह अतीत का खनन एक निहित दृष्टिकोण से करते हैं। वह अतीत के इतिहास का निर्धारण करने वाली परिस्थितियों, वातावरण, सांस्कृतिक सम्मिलन मिश्रण, राजनीति तथा मनुष्य के विवेक को संचालित करने वाले तत्त्वों के संदर्भों से अपनी विचारधारा को मुक्त मान लेते हैं। उनकी समसामयिकता का अर्थ वर्तमान राजनीति में प्राचीन सामाजिक समन्वय की जगह संघर्ष के उद्देश्य को प्रमाणित करने वाला होता है, क्योंकि वह इतिहास में अनेक वादों की खोज कर चुके

हैं; जबकि इतिहास किसी समसामयिक वाद का मुखापेक्षी नहीं है। वह तो अतीत के यथार्थ का स्वरूप है, जिसे वर्तमान में सांस्कृतिक ऊर्जा प्राप्त करने की प्रवृत्ति में लोग स्मरण करते रहते थे। परन्तु अब वादों के सिद्धान्तों ने इतिहास निर्धारण की अपनी-अपनी योजनाएं बना रखी हैं। इन्हें कालान्तर में इतिहास स्वीकार किया जाएगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता। अधिकांश वाद योजनाएं आधुनिक राजनीतिक दृष्टिकोण में अतीत की समसामयिकता उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण को प्रदर्शित करती हैं। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति कितनी दूर तक इतिहास को प्रभावित कर सकती है। यह जानकर विस्मय होता है कि आधुनिक हिन्दू संस्कृति के स्वरूप में आई विकृति को उसके मूल में ही जो ईसा से हजारों साल पहले विद्यमान थी, स्थित मानते हैं। तब से लेकर आज तक के काल खण्ड में, जिसे सैकड़ों राजवंशों (देशी और विदेशी) ने भोगा है, उसमें से किसी विदेशी प्रभाव से ग्रसित कालखण्ड से वह समसामयिकता ग्रहण नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह है कि राजनीति का और इतिहास का सम्बन्ध बहुत संश्लिष्ट है। राजनीति सदैव इतिहास को अपने अनुसार नियमित करने की चेष्टा करती है। वर्तमान काल भी इसी तथ्य को प्रकट करता है। जहाँ तक इतिहास का भारतीय संस्कृति से संम्बन्ध है, वह भारतीय समाज में उसकी स्मृतियों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाह की देन है। ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व भारत की हड़प्पा संस्कृति में भी इतिहास की लिखित परम्परा प्रकाश में नहीं आती, परन्तु लेखनकर्म विद्यमान नहीं था, ऐसा भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि वहाँ लिखित अभिलेख प्राप्त हुए हैं। यह दूसरी बात है कि उनको अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। यदि वे लेख कभी पढ़े जा सके तो संभव है वह यथार्थ प्रकट हो, जो वर्तमान इतिहास ने अनुमानों के आधार पर संभवतः समसामयिक राजनीतिक दृष्टिकोण से नकारा गया है। यह समझना चाहिए कि राजनीति के हाथ शक्तिशाली होते हैं, वह समाज को नियन्त्रित करती है। इतिहास के पास उसका प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं होती। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि विचारकों की प्रकृति भी इतिहास में समसामयिकता निश्चेष्ट और मौन पड़े इतिहास की व्याख्या को इच्छित वाणी द्वारा मुखर करती है। उसकी मूल वाणी क्या है, इसे तो वह विचारक भी नहीं जानते, जो उनकी व्याख्या करके अपने शब्दों से उसे आभूषित करते हैं।

कॉलिंगवुड ने लिखा है-**"इतिहास का सम्बन्ध न तो अतीत और न इतिहासकार के अतीत सम्बन्धी विचार में रहता है, अपितु इतिहास से इन दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। इतिहासकार जिस अतीत का अध्ययन करता है, वह मृत अतीत नहीं, बल्कि इतिहासकार के मस्तिष्क में सजीव अतीत होता है।"**

कहने का तात्पर्य यह है कि इतिहास स्वयं में अर्थपूर्ण है या अर्थहीन, इसका निर्णय इतिहासकार अपने मस्तिष्क में करता है।

वाल्श ने इस बात को इन शब्दों में स्पष्ट करने की चेष्टा की है-**"हमें यह मान लेना चाहिए कि इतिहास अर्थपूर्ण है या इतिहास अव्यवस्थित और असंगठित घटनाओं का संयोग है, जिसमें न तो कोई स्वर है और न तर्क।"**

इसी कारण इतिहासकार अपने विशेष दृष्टिकोण से अतीत की विवेचना करता है। अतः वह अनेक अतीत-कालीन तथ्यों के आधार पर घटना का एक परिकल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है, जो उद्देश्यपूर्ण होता है। समसामयिकता के सिद्धान्त में ये उद्देश्य परिलक्षित होते हैं।

इतिहास सम्बन्धी उक्त वैचारिक पृष्ठभूमि पर यदि हम राजनीतिक विज्ञान का सम्बन्ध इतिहास से निर्दिष्ट करें तो यह बात उभर कर आती है कि वे शासक जिनके विवरण के आधार पर इतिहास क्रम को चिह्नित किया जाता है, वह शासन व्यवस्था को राजनीतिक सिद्धान्तों तथा व्यवहार से ही संभालते थे, वर्तमान में भी वही प्रक्रिया विद्यमान है। यह प्रक्रिया इतिहास की भारतीय अवधारणा की देन नहीं है। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए, यह यूनानी और रोमन इतिहास-लेखन परम्परा की देन है। प्रागैतिहासिक या प्राचीन ऐतिहासिक भारत में इतिहास की इस लेखन परम्परा को स्वीकार नहीं किया गया। अतः हमें इस रूप में भारत के प्राचीन इतिहास की जानकारी प्राप्त नहीं होती। कारण मात्र इतना है कि भारत में इतिहास का कालक्रम चिह्नांकन राजाओं और उनकी राजनीतिक उपलब्धियों के आधार पर करने का चलन नहीं था। भारत में उसका चिह्नांकन सांस्कृतिक रूपरेखा में किया गया। यह स्वतः सिद्ध प्रमाणित तथ्य के रूप में इस बात से

समझा जा सकता है कि राजाओं के जीवन-वृत्त उनकी राजनीतिक उपलब्धियों का विवरण नहीं देते, परन्तु यह भी नहीं मान लेना चाहिए कि उनके कार्य राजनीति से सम्बन्धित नहीं थे। भारतीय संस्कृति राजनीति को धर्म में अर्थात् जो 'धारण करने योग्य हो' ऐसे धर्म के आश्रित मानती थी। वह धर्म को मानवीय सदाचार से सम्बद्ध करके चलती थी, जिसमें राजनीति समाहित होती थी। परन्तु शासन व्यवस्था में राजनीति एक कार्यकारी तत्त्व होता है, इसलिए राजाओं के आधार को उनके धर्म-व्यवहार से सम्बद्ध करके ही देखा गया। इसी कारण राजाओं के कार्यों का आकलन धर्म (जो मानव हित में धारण करने योग्य है) की तुलना पर किया जाता रहा। इसी संदर्भ में भारतीय इतिहास से राजनीति सम्बन्धी विवेचन भारत के धार्मिक इतिहास में प्रकट हुए हैं। इस तथ्य का साक्षी भारत का प्राचीन वाङ्मय है, यहाँ तक कि ऋग्वेद भी। 'महाभारत' इस तथ्य का महासाक्षी है तथा 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' भारत के राजनीतिक विज्ञान का अपूर्व ग्रन्थ है, जो राजा, राजधर्म तथा राजकीय व्यवहारों का भी स्पष्ट विवेचन करता है। इस प्रकार से राजनीतिक चिन्तन, राज्य संस्कृति के साथ प्रासंगिक सम्बन्धों के रूप में किया गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि राजनीति का शासन और शासकों से चोली-दामन का सम्बन्ध होता है। जब इतिहास के कालक्रम का राजाओं से अंकित की जाने वाली पद्धति का विकास हुआ तो स्वभावतः राजनीतिक विज्ञान इतिहास से सम्बद्ध हो गया। चूँकि इतिहास का निर्दिष्टीकरण राजनीतिक हो गया है, अतः राजनीतिक दृष्टिकोण से ही उसमें समसामयिकता की अवधारणा की भी सृष्टि हुई। इतिहास सामाजिक ज्ञान की अध्ययनात्मक विवेचना के लिए राजनीति की प्रयोगशाला के रूप में इसी कारण आज प्रतिष्ठित है, क्योंकि वर्तमान में सामाजिक संस्कृति शासन सापेक्ष है।

अतः यह तो स्पष्ट है ही कि आधुनिक इतिहास-लेखन की पद्धति और मुख्य विषय-वस्तु शासन और शासकों की इतिवृत्तीय घटनाओं का उल्लेख है, अतः प्रशासनिक व्यवहार स्वाभाविक रूप में उससे सम्बन्धित होते हैं। वर्तमान में विषयानुभूत अध्ययन की दृष्टि से राजनीतिक क्रियाकलापों का संग्रह करके उनको दो आधारों पर वर्गीकृत कर दिया गया है। इतिहास तत्कालीन राजनीति की कहानी बताता है, जबकि राजनीतिशास्त्र में सामान्य एवं विशेष के भेद से शासन-विधियों का उल्लेख किया गया होता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि प्राचीन पाश्चात्य दृष्टिकोण में इतिहास की अवधारणाएं राज्य संस्था अपने विभिन्न रूपों में इतिहास की मुख्य विषय-वस्तु रही है और राउज ने तो राजनीति को इतिहास का मेरुदण्ड तक कहा है। स्वभावतः इतिहास का यह रूप राजनीतिक व्यक्तियों के विवरण से ही निर्मित होता है। अतः ज्ञात ऐतिहासिक युग के जननायक तत्कालीन घटनाओं को नियन्त्रित कर राज्य-संस्था के माध्यम से अपनी अभिलाषाओं को जो धारण करने योग्य है, उसमें मूर्त करते रहे हैं और वर्तमान समय तो पूरी तरह से राजनीतिक इतिहास-लेखन का ही युग है। **प्रो० बर्निस** ने इसके दो कारण बताए हैं-

(1) हीगल का राज्य विषयक सिद्धान्त, और

(2) राष्ट्रीयता की भावना।

गिबन, मैकाले, थ्यूसिडिडीज आदि के अनुसार-भूमि इतिहास मात्र न होकर राजनीतिक इतिहास ही है। **एक्टन** ने राजनीति को इतिहास में देखा है। **शोले** ने इस विषय में लिखा है-**"राजनीति प्रपंच है यदि इतिहास द्वारा यह उदात्तीकृत नहीं है। इतिहास साहित्य में समाप्त हो जाता, यदि वह व्यावहारिक राजनीति से सम्बद्ध नहीं होता।"**

राउज के अनुसार, इतिहास में राजनीति का इतिहास सबसे मनोरंजक विषय है।

शेख अली के अनुसार-**"अब राजनीतिक इतिहास के क्षेत्र में परिवर्तन आ रहा है और तदनुसार पहले जैसे कभी भी राजनीतिक व्यक्तित्व की व्यक्तिगत भूमिका के स्थान पर जन सामान्य की भूमिका को महत्त्व दिया जा रहा है, जिसे हम सूक्ष्म इतिहास (माइक्रोहिस्ट्री) भी कहते हैं।"**

परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि जन सामान्य का नेतृत्व भी जननायक ही करते हैं और इस प्रकार वही सामान्य जनता के प्रतिनिधि होते हैं, अतः उनके व्यक्तित्व को इतिहास नकार नहीं सकता। यह दूसरी बात है कि वैयक्तिक चरित्र के रूप में चाहे वह आदर्श छवि को प्रमाणित न कर सकते हों। शायद इसीलिए राजनीति अपनी व्यक्तिगत निर्बलताओं को इतिहास की वस्तु नहीं बनने देना चाहते, अन्यथा जन नायकत्व

एक आदर्श छवि उपस्थित करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए ऐसे नायकों की छवि को व्यक्तिगत या सार्वजनिक छवि से अलग करके नहीं देखना चाहिए। प्रायः जननायकों या राजनीतिकों की गतिविधियाँ (सार्वजनिक हो या राजनीतिक) उनके व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं से भी प्रभावित होती हैं, जिसका भुगतान जनता को करना पड़ता है।

□

3. इतिहास और प्राकृतिक (भौतिक) विज्ञान, नीतिशास्त्र के साथ संबंध की विवेचना कीजिए। (Discuss the relationship of history with Natural Science and Ethics.)

उत्तर–I. इतिहास और प्राकृतिक (भौतिक) विज्ञान (History and Natural Science)– आधुनिक समय में भौतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ बहुआयामी हैं। लेकिन हम जिस काल से इतिहास युग आरम्भ हुआ मानते हैं तब मनुष्य के मन में भौतिक विज्ञान की अवधारणाएं उसे इस भौतिक ब्रह्माण्ड के अलौकिक पक्ष में जोड़े हुए थीं। प्राचीन यूनान, बेबीलोन, मिस्र आदि देशों की सभ्यताएं इस प्रकृति को दैवी शक्तियों द्वारा प्रादुर्भूत उसी के नियन्त्रण में मानती थीं, अतः यही उनका भौतिक विज्ञान था। लोहा या अन्य धातुओं की प्राप्ति उसे धरती से होती थी। वृक्ष, फल, फूल, लताओं आदि को भी मनुष्य देखता था, पहाड़ों पर आरोहण भी करता था, वायु प्रवाहित होती थी, बरसात होती थी और बादलों में बिजली भी कड़कती थी। उनके प्रति अपने सम्बन्धात्मक अनुभव ज्ञान के अतिरिक्त वह उनके तत्त्वों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था; परन्तु मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है जो उसे जिज्ञासु बनाता है और वह इस बात का कारण जानना चाहता है। परिणामस्वरूप उसने सब कुछ जाना और उसने प्राकृतिक विज्ञान के रहस्यों को खोजकर ही तृप्ति अनुभव नहीं की; बल्कि उसने उन्हें अपने लिए परम उपयोगी भी बना लिया। निश्चय ही इस प्रकार भौतिक विज्ञान जैसे-जैसे कदम आगे बढ़ाता गया; वैसे-वैसे मनुष्य जाति के इतिहास को भी प्रभावित करता चला गया। घास-फूस से बनने वाली झोंपड़ियाँ मिट्टी के घरों में परिवर्तित हुईं और कच्ची ईंटें, पक्की ईंटों में, पत्थरों की काट-छाँट और मिट्टी के पात्रों में कला उत्पन्न हुई। लाठी-पत्थरों से होने वाले युद्ध तलवारों और भालों से लड़े जाने लगे, बड़े-बड़े किलों की ऊँची दीवारों तक पहुँचने के लिए मचान और यन्त्र बनने लगे। जमीन से पानी निकालने के साधन बनाए गए। यह सब मनुष्य के इतिहास के बढ़ते हुए चरणों के साथ-साथ हुआ, जिसने मनुष्य की सोच और कार्य-व्यवहार में परिवर्तन किया। वस्त्र-आभूषण आदि सभी चीजें भौतिक विज्ञान की देन थीं। आज हम भौतिक विज्ञान के ही कारण एक छोटे से गाँव या नगर के स्थान पर अपने सम्बन्धों को विश्व के दूर कोने के साथ जोड़कर समाज व संस्कृति और राजनीतिक स्थितियों तथा व्यवहार का आकलन करते हैं और उन्हीं के अनुसार अपनी सोच की समृद्धि से इतिहास को आगे बढ़ने का मार्ग देते हैं। भौतिक विज्ञान ने जहाँ एक ओर मनुष्य को इतना दिया है, वहीं दूसरी ओर उसने भयानक आशंकाएं भी पैदा कर दी हैं। इस प्रकार इतिहास की अपनी सृजनात्मक और विध्वंसात्मक प्रकृति अपने शाश्वत रूप में आज भी विद्यमान है। स्वाभाविक रूप से समझा जा सकता है कि इतिहास की करवटें और ज्ञान की गति एक-दूसरे के प्रति सापेक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। ज्ञान चाहे किसी प्रकार का हो, चाहे उसके कितने ही आयाम और विस्तृत क्षितिज हों, मानव इतिहास से उसका प्रगतिगामी संबंध है। भौतिक विज्ञान ने आज मनुष्य के इतिहास को सुख-सुविधाओं, मनोरंजन के विलक्षण प्रसाधनों तथा कार्य-क्रियाओं की क्षमता उपलब्धियों ने कहीं का कहीं पहुँचा दिया है। मनुष्य ने भौतिक विज्ञान के विविध विक्षेपों से प्रभावित होकर स्वयं को किस प्रकार परिवर्तित किया, अपने इतिहास को किस प्रकार नए-नए परिधान पहनाए, यह सब बातें हमारे सामने हैं।

यह बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि इतिहास मानव समाज और उसके वर्ग समूहों के कार्यों का विवरण है। मनुष्य अपने अतीत का स्मरण करता है, अपने वर्तमान को उससे शक्ति प्राप्त करने के लिए; ताकि वह प्रस्तुत वर्तमान को अनुकूल अर्थात् गौरवान्वित भविष्य की ओर ले चल सके। प्रारम्भ काल से ही मानव ने अपनी विवेक बुद्धि से अनुकूल भविष्य की प्राप्ति के लिए शक्ति अर्जित करते रहने के उपाय